देव-सुधा

[महाकवि देव से चारु चयन]

संग्रहकार और टीकाकार मिश्रबंधु

अर्थात्

पंडित गणेशविहारी मिश्र (स्वर्गवासी)

रावराजा रा० ब० डॉक्टर श्यामविहारी मिश्र एम्० ए० (स्वर्गवासी)

रा० ब० शुकदेवविहारी मिश्र साहित्यवाचस्पति

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, लाटूश रोड

लखनऊ

[संशोधित एवं परिवर्द्धित तृतीय संस्करण]

सजिल्द २॥)] सं० २००५ वि० [सादी २)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

1. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
2. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, कास्थवेट रोड, प्रयाग
3. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना

नोट—इनके अलावा हमारी सब पुस्तकें हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

निवेदन

[मेजर विंध्येश्वरीप्रसाद पांडेय बी० ए०, एल् एल० बी०,
चीफ़ मिनिस्टर ओरछा-राज्य]

व्रज-भाषा के अनमोल पारखी, देवजी के ही शब्दों में "लाखन खरचि रचि आखर खरीदने"वाले, काव्य - मर्मज्ञ, भूपालश्रेष्ठ श्रीमान् एच्० एच्० श्रीसवाई महेंद्र महाराजा श्रीवीरसिंहदेव ओरछा-नरेश ने गत वर्ष घोषित किया था कि वह प्रतिवर्ष हिंदी के सर्वोत्कृष्ट काव्य-ग्रंथ के रचयिता को २,०००) का पुरस्कार प्रदान किया करेंगे। वसंतोत्सव के समय टीकमगढ़ में जो वार्षिक कवि-सम्मेलन होता है, उसमें इसी उदार आज्ञा के अनुसार श्रीमान् ने इस वर्ष यह २,०००) का पुरस्कार 'दुलारे-दोहावली'-ग्रंथ पर पंडित दुलारेलाल भार्गव को प्रदान किया। पुरस्कार पाते समय दुलारेलालजी ने कवि-कुल-गुरु श्रीकालिदास की "यश से विजिगीषूणाम्"वाली उक्ति के अनुसार न केवल यह धन श्रीमान् के शुभ नाम पर हिंदी-हित में लगा दिया, वरन् इसी मूल्य की पुस्तकें भी अपने पास से देकर एक पुस्तकमाला प्रकाशित करने का विचार उसी समय श्रीमान् ओरछा-नरेश की सेवा में प्रकट किया, जिसे श्रीमान् ने भी सहर्ष स्वीकार किया। इस संबंध में जो वक्तव्य श्री दुलारेलालजी

ने पुरस्कार प्राप्त करने पर टीकमगढ़ में दिया था, वह पुस्तक के अंत में अंकित है। उसी के अनुसार, प्रायः एक ही मास के भीतर, 'देव-सुकवि-सुधा'-नामक ग्रंथमाला का यह पहला पुष्प ('देव-सुधा') हिंदी-कोविदों के लाभार्थ प्रकाशित किया जाता है। माला का नाम 'देव-सुकवि-सुधा' है ही, सो पहले इसमें 'देव-सुधा' नाम के ग्रंथ का ही गूँथा जाना उचित ही हुआ। यह ग्रंथ लखनऊ के अखिलभारतवर्षीय कवि-सम्मेलन के शुभ अवसर पर—१० मार्च, १९३५ को—श्रीमान् के कर-कमलों में अर्पित किया गया।

प्राक्कथन

महाकवि देवदत्त उपनाम देव-कवि दुसरिहा द्विवेदी कान्यकुब्ज ब्राह्मण पंसारीटोला बलालपुरा, शहर इटावा के निवासी थे। भाव-विलास में आपने अपना जन्म-काल संवत् १७३० लिखा, तथा सुख-सागर-तरंग ग्रंथ पिहानी के अकबरअलीख़ाँ को समर्पित किया। इनका आदिम समय संवत् १८२४ था। अतएव इनका जीवन-काल ६४ वर्ष से अधिक बैठता है। आप हिंदी के परमोत्कृष्ट कवियों में थे। गोस्वामी तुलसीदास तथा सूरदास के पीछे उत्तमता में हम इन्हीं का नंबर समझते हैं। आचार्यता, भाषा-सौष्ठव तथा भाव-गांभीर्य आपके प्रधान गुण हैं। टीका का भाग पढ़ने से भाव-गांभीर्य प्रकट होगा। देव के पूरे भाव खोज निकालना कठिन भी है। आपके ७२ या ५२ ग्रंथ कहे जाते हैं। इनमें से भावविलास (सं० १७४६), अष्टयाम, भवानी-विलास, कुशल-विलास, प्रेम-चंद्रिका, जाति-विलास, रस-विलास (सं० १७८३), शब्द-रसायन, सुख-सागर-तरंग (सं० १८२४ के पीछे), नीति-शतक, वैराग्य-शतक, सुजान-चरित्र, राग-रत्नाकर, देव-शतक, सुंदरी-सिंदूर, शिवाष्टक, प्रेम-तरंग, देव-माया-प्रपंच-नाटक, देव-चरित्र, वृक्ष-विलास, पावस विलास, प्रेम-दर्शन, रसानंद-लहरी, प्रेम-दीपिका, सुमिल-विनोद, राधिका-विलास, नख-शिख और प्रेम-दर्शन ज्ञात हो चुके हैं। रस-विलास और प्रेम-चंद्रिका में परमोच्च साहित्य-गौरव है, शब्द रसायन में आचार्यता, भाव-विलास में रीति-कथन, वृक्ष-विलास में अन्योक्ति, नाटक में (अर्द्ध-नाटक के रूप में) धर्म-विवेचन, देव-चरित्र में कृष्ण-कथा तथा अन्य ग्रंथों में अन्य अनेकानेक विषय।

देवजी पहुँचे अनेक ऊँचे-ऊँचे स्थानों में, किंतु जमकर बहुत दिन कहीं भी नहीं रहे। चाहे आश्रयदाता की खोज में, या किसी अन्य कारण से आप सारे भारतवर्ष में घूमते फिरे। इसके फल स्वरूप आपने जातियों और देशों की वधुओं का सच्चा वर्णन रस-विलास में बहुत अच्छा किया। राग-रत्नाकर में राग-रागिनियों का उत्कृष्ट कथन है। देवजी की बहुज्ञता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। इनकी रचना के मुख्य गुणों में भाषा-सौंदर्य, उत्कृष्ट छंदों का प्राचुर्य, प्राकृतिक दृश्यों का विवरण, वैभव, आचार्यत्व, ऊँचे ख़याल, हृदय पर चोट करनेवाले उच्च प्रेम के कथन, उपमा, रूपकादि का अच्छा अवलोकन, चोजों का निकालना आदि कहे जा सकते हैं। आपने अधिकतर सवैया तथा घनाक्षरियों में रचना की।। कुछ श्रेष्ठ दोहे भी लिखे।

इस ग्रंथ में हमने इनके मुद्रित तथा अमुद्रित बहुतेरे ग्रंथों से छाँट-कर २७२ परमोत्कृष्ट छंद रक्खे हैं। छपने में ११६ वाँ नंबर बिना छंद के छोड़कर एक नंबर बेजा बढ़ गया है। अनेकानेक अन्य छंद भी ऐसे ही बढ़िया हैं, किंतु आजकल जनता थोड़े में अधिक जानने की इच्छा रखती है, इसी से थोड़े ही छंदों में हमने देव का महत्त्व दिखलाने का प्रयत्न किया है। पहले हमारा विचार था कि बिहारी सतसई की भाँति इनके भी ७०० छंद चुनें, किंतु पीछे उपर्युक्त विचार से चुने हुए छंदों की संख्या कम कर दी गई है। ऐसे ही छोटे-छोटे संग्रह-ग्रंथ इतर महाकवियों के भी लिखने का विचार था। इस ग्रंथ में हमने प्रार्थना, सिद्धांत, विविध वर्णन, गौरी-सौभाग्य, सीता-सौभाग्य, प्रकृति-निरीक्षण, समीर, चंद्र-चंद्रिका, विनोद, पावस, हिंडोरा, फाग, रास, राग, उपमादि, शाब्दिक सामंजस्य, संक्षिप्त गुण, रूप, चित्र, दर्शन-मिलन, प्रेम, मन, विरह, खंडिता, उपालंभ, मान, सखी की शिक्षा, काव्यांग, उद्धव और देश तथा जाति के विषयों पर छंद चुने हैं। अश्लील विषयों के कई परमोत्कृष्ट छंद भी निकाल डाले गए हैं।

देव-कृत छंदों में विविध भाव निकलते हैं, सो विषय-विभाजन में मत-भेद हो सकता है, अर्थात् वे ही छंद अन्य विभागों में भी रक्खे जा सकते हैं, अथच नवीन विभाग बन सकते हैं, जैसे स्वाभाविकता, रस, भाव, अलंकार आदि-आदि अनेक विषयों पर। आशा है, ऐसे ही कई संग्रह निकल चुकने पर पाठक महाशय सुगमता-पूर्वक तुलनात्मक समालोचना में सफल हो सकेंगे। देवजी के छंदों पर टीका का प्रारंभ हमने सं० १६८१ में किया था, किंतु कई कारणों से यह काम अब तक पड़ा रहा था। आदि में भूमिका की रचना देव-कृत छंदों से ही की गई है। इसमें आपके साहित्य-संबंधी विचार मिलेंगे। कुछ महाशय देव की रचना में अर्थ-काठिन्य का दोष लगाते थे, अथच एक समालोचक का कथन है कि इनमें असमर्थ अर्थ-पूर्ण शब्द-प्राचुर्य भी है। किसी के हज़ारों छंदों में से दो-चार में खींच-तान द्वारा कोई दोष स्थापित करके उसे व्यापक शब्दों में कह देना सत्य की अवहेलना करनी है। देव की रचना में अर्थ-गांभीर्य अवश्य है। प्रति शब्द पर विचार करने से छंदों में मनोहर अर्थ निकलते हैं। कुछ महाशय उन्हें समझने का सामर्थ्य ही न रखकर अपने अल्प ज्ञान का दोष कवि पर रखने लगते हैं। "चितवत लोचन अंगुलि लाए। प्रकट युगल शशि तिनके भाए।" कुछ लोग समयाभाव या शीघ्रता की आदत से प्रति शब्द पर विचार न करके पूर्ण अर्थ नहीं समझ पाते, और अपनी उस असमर्थता का दोष कवि पर लादते हैं। इन्हीं कारणों से छंदों के कठिन भागों के हमने इस बार अर्थ लिख दिए हैं, जिसमें उपर्युक्त प्रकार की गड़बड़ न पड़े। साधारण पाठक भी प्रायः टीका-सहित पाठ चाहते हैं। यद्यपि हम लोग हिंदी की सेवा किया ही करते हैं, तथापि हमारा यह क्षेत्र टीका न होकर समालोचना है। टीका हमने इतिहास के कारण केवल भूषण पर लिखी थी। इस बार देव के विषय में यही करना पड़ा, सो भी विवश होकर।

देव-कृत दोहों के अतिरिक्त प्राय: १५०० छंद हैं, जिनमें हज़ार-आठ सौ तक उत्कृष्ट निकलेंगे। प्राय: १४०० छंद छाँटे थे, जिनमें से ये २७२ यहाँ दिए जाते हैं। २५० छंद छाँटने बैठे थे, किंतु २२ और छूट गए, जिनको अलग करना ठीक न जँचा, सो वे भी रख दिए गए। प्राय: २०० और छंद भी इसी उत्तमता के निकलेंगे, ऐसा विचार है। शेष तीन-चार सौ छंद भी उत्कृष्ट हैं, किंतु इन ५०० के बराबर नहीं। हमारी समझ में बिहारी के प्राय: ढाई सौ छंद श्रेष्ठ होंगे, और इतरों के भी भले-बुरे निकलेंगे। कवि-सुधा निकालने का हमारा मुख्य विचार यह है कि सुकवियों की उत्कृष्ट रचनाएँ एकत्र हो जायँ, तथा तुलनात्मिका समालोचना की सुविधा हो जाय। अभी लोग किसी कवि के अच्छे और दूसरे के साधारण या बुरे छंद लेकर कभी-कभी तुलना करने बैठते हैं, जिससे न्याय नहीं होता। ये संग्रह निकल जाने से श्रेष्ठ छंद एकत्र हो जायँगे, और यह कठिनता कम हो जायगी।

लखनऊ
सं० १९०५ } मिश्रबंधु

भूमिका

यह भूमिका महाकवि देव-कृत स्फुट दोहों को एकत्र करके बनाई गई है। पाठक महाशय इन कविवर के ऐसे विचार इन्हीं के शब्दों में सुनें—

(१)

प्रार्थना

इंदु-कलित सुंदर बदन मनमथ-मथन-बिनोद।
गोबरधन-गिरि जासु बन, बिहरत गोपति गोद[1] ॥ १ ॥
श्रीराधे. ब्रजदेवि जै सुंदर नंदकिसोर।
दुरित हरौ चित के चितै नैसुक दै दृग-कोर ॥ २ ॥
राधा कृष्ण किशोर युग पद बंदौं जग-बंद।
मूरति रति सिंगार की सुद्ध सच्चिदानंद ॥ ३ ॥
श्रीराधा हरि-प्रेम-बस सरस सिँगार उदार।
छ रितु बारहौ मास गुन बृंदा-बिपिन-बिहार ॥ ४ ॥
हरिजसरस की रसिकता सकल रसायनि-सार।
जहाँ न करत कदर्थना यह अनर्थ संसार ॥ ५ ॥

१. जिसका बन गोवर्द्धन-गिरि है, और जो गउओं के स्वामी नंद गोप की गोद में विहार करता है।

दारिद नदर बिदार जसु आदर उदित उदार।
जग अमंद आनंद गुन मंद कियो मंदार[1] ॥ ६ ॥
धरयौ निरंतर सात दिन गिरिवर गिरिधरलाल।
उपजै हिय मैं धकधकी, थकौ न भुज केहु काल ॥ ७ ॥
श्रीगुरुदेव कृपाल की कृपा सुबुद्धि समीप।
तिमिर मिटै, प्रगटै हृदय-मंदिर अनुभव-दीप ॥ ८ ॥
एक भक्ति गोपीन की प्रेम-भाव संसार।
दूजी भक्ति बिरक्त जन दास्यता[2] भाव बिचार ॥ ९ ॥

(२)

साहित्य

ऊँच-नीच तन कर्म-बस चल्यो जात संसार।
रहत भव्य भगवंत जसु नव्य काव्य सुख-सार ॥ १० ॥
रहत न घर वर धाम धन तुरुवर सरवर कूप।
जस-सरीर जग मैं अमर भव्य काव्य-रस-रूप ॥ ११ ॥
अर्थ सब्द सुंदर सरस प्रगट भाव रस प्रीति।
उत्तम काव्य सु सब गुनन आगर नागर रीति ॥ १२ ॥
अनुप्रास अरु जमक युत[3] अद्भुत बारह भांति।
इन्हैं अछत नीकी लगै अलंकार की पाँति ॥ १३ ॥

---

१. गुण से कल्पवृक्ष मंद किया।

२. दास-भाव। सखी-भाव तथा दास-भाव की भक्ति का कथन इस दोहे में आया है।

३. जो हैं। देव का मत है कि अनुप्रास और यमक-युक्त होने से अलंकार अच्छे लगते हैं।

ऊपर रूप अनूप अति, अंतर अंतक[1] तूल।
इंद्रायन[2] के फल यथा करियारी[3] के फूल ॥ १४ ॥

ऊपर रूखो अतिहि फल, अंतर अति रस राखि।
सुरुचि जीभ जौहर करत कोहर[4] फल मुख चाखि ॥ १५ ॥

कहत लहत उलहत हियो, सुनत चुनत चित प्रीति।
सब्द अर्थ भाषा सुरस बसत काव्य दस रीति ॥ १६ ॥

कविता-कामिनि सुखद पद सुबरन सरस सुजाति।
अलंकार पहिरे अधिक अद्भुत रूप लखाति ॥ १७ ॥

अलंकार में मुख्य द्वै उपमा और स्वभाव।
सकल अलंकारन छिपे परसत प्रगट प्रभाव ॥ १८ ॥

अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लच्छना लीन।
अधम व्यंजना रस कुटिल उलटी कहत नवीन ॥ १९ ॥

दसा अवस्था हाव दस यद्यपि सकल तियानि।
तदपि रसिक क्रम ते कहत मुग्ध मध्य प्रौढ़ानि ॥ २० ॥

दसम अवस्था मूरछा कहूँ मरन ह्वै जात।
नीरस जानि न बरनिए कठिन करुन सुखघात ॥ २१ ॥

विमल सुद्ध सिंगार-रस देव अकास अनंत।
उड़ि-उड़ि खग ज्यौं और रस बिबस न पावत अंत ॥ २२ ॥

१. यमराज, मृत्यु।

२. एक प्रकार का फल, जो देखने ही में अच्छा होता है, अपितु है विष।

३. लाल रंग का फूल, जो ज़हर होता है।

४. फल लाल रंग का।

पात्र मुख्य सिंगार को सुद्ध सुकीया नारि।
प्रथम संग नवनेह के बरे[1] परे दिन चारि॥ २३॥

परकीया उपपति बिरह होति प्रेम-आधीन।
पति संपति तन बिपति मैं दौरि परै पनपीन॥ २४॥

पर-रस चाहै परकिया तजै आपु गुन गोत।
आप औटि खोवा मिलै खातर[2] दूध फल होत? ॥ २५॥

काची प्रीति कुचालि की बिना नेह रस रीति।
मार रंग[3] मारू मही[4] बारू की-सी भीति॥ २६॥

मुग्धादिक बयभेद अरु मान सुरत सुरतंत।
बरने मत साहित्य के उत्तम कहा न संत॥ २७॥

रसनि-सार सिंगार-रस, प्रेम-सार सिंगार।
बिना प्रेम दंपति बिपति संपति सुख दुख-भार॥ २८॥

सरस भाव उर अंकुरित फूलि फलै सुख-कंद।
सुपन, दरस, सुमिरन, परस, बरसत रस-आनंद॥ २९॥

---

१. विवाह हुए।

२. खोया को पानी में घोलकर और औटाकर जो दूध बनाया जाता है, वह कृत्रिम, हानिकर और कुस्वादु होता है। असली दूध लाभकर, सुस्वादु और पौष्टिक होता है। स्वकीया और परकीया की प्रीति में भी इसी प्रकार असली और नक़ली दूध का भेद है।

३. रंग का मरना; चौपड़ में चार नरदें रंग की, तथा चार बदरंग की होती हैं। रंग की नरद मरने से विशेष हानि होती है।

४. मारनेवाली मही=दलदल।

(३)

प्रेम

मायादेवी नायिका, नायक पूरुष आप।
सबै दंपतिन मैं प्रगट देव करै तिहि जाप ॥ ३० ॥
छेम छिमा छिति प्रेम की हेम भरै तेहि साखि।
छिद्यो, भिद्यो, औंधो भर्‌यो अंग संग अभिलाखि १॥३१॥
दंपति सुख संपति सजत तजत विषय-बिष-भूख।
देव सुकबि जीवत सदा पीवत प्रेम-पियूख २॥३२॥
नागर अरु ग्रामीन-गति समुझत परम प्रवीन।
कामु कहा तिनको जु सठ कामुक हृदै मलीन ॥ ३३ ॥
तनिक झुठाई प्रेम की झूठे कुल-गुन-गात।
प्रेमीजन प्रिया प्रेम-बस जगमग जग मैं होत ॥ ३४ ॥
नव सुंदर दंपति जदपि सुख-संपति को मूल।
प्रेम बिना छिन छेम नहिं हेम-सलाका तूल ३ ॥ ३५ ॥

---

१. सोना अंग-संग रहने की अभिलाष से अपने को छेदवाता, भिदाता तथा लटकता और साँचे में भरा जाता है।

२. जो प्रेम-पियूष दंपति के पास होता है, उसमें विषय-विष की चाह नहीं होती है।

३. समान। दंपति परम सुंदर क्यों न हों, परंतु यदि उनमें प्रेम नहीं है, तो उनके लिये क्षण-भर को भी कुशल नहीं है। दंपति-सुख के लिये प्रेम आवश्यक है, सौंदर्य नहीं।

प्रेम-पियूष-पयोधि मैं मिलत बिमल निरदुंद।
न्यारो होत न एक ह्वै ज्यों जल तें जल-बुंद ॥ ३६ ॥
पूरन पुन्य उदोत जेहि प्रेम-पियूष१-पयोधि२।
निकसी निरमल चंद्रिका, बिकसी सब जग सोधि ॥ ३७ ॥
प्रेमवती पदुमिनि हरै मधुकर-उर की प्यास।
बूड़ि मरै अलि धूलि मैं केतिकि पद-बिन्यास ॥ ३८ ॥
प्रेम रूप रस बस करै तिय मैं प्रेम अनूप।
यमकी-सी तिय प्रेम बिनु मनु आसीबिष३ रूप ॥ ३९ ॥
प्रेम कलह मध्या कलुष प्रौढ़ा मानस गर्ब।
रोख दोख सों मिलत नहिँ प्रेम पोष सुख पर्ब ॥ ४० ॥
तब ही लौं सिंगार रसु, जब लगि दंपति-प्रेम४।
मलिन होत रस प्रेम बिन ज्यों कलई को हेम ॥ ४१ ॥
यह बिचार प्रेमीन को बिषयी जन को नाँहि।
बिषय बिकाने जनन को प्रेमी छियत५ न छाँहि ॥ ४२ ॥
ऐसे ही बिन प्रेम रस नीरस रस सिंगार।
प्रेम बिना सिंगार हू सकल रसायन सार६ ॥ ४३ ॥

१. अमृत।

२. समुद्र।

३. सर्प।

४. कवि दंपति-प्रेम से परिपूर्ण रस को ही श्रृंगार-रस मानता है।

५. छुवत।

६. श्रृंगार बिना प्रेम के नीरस है, किंतु बिना श्रृंगार का भी प्रेम सरस है।

गति अनन्य[1] मुग्धानि मैं तनमयता[2] नित होति।
अंधकार जरि जात उर प्रेम-दीप की जोति ॥ ४४ ॥

1. न, अन्य=अनन्य, अर्थात् जिसको दूसरी गति न हो।
2. लीन हो जाना।

विषय-सूची

देव-सुधा

(१)

वंदना

राखी न कलप तीनो काल बिकलप मेटि,
कीनो संकलप, पै न दीनो जाचकनि जोखि ;
नाग, नर, देव महिमा गनत नंदजू की,
माँगन जु आयो, सो न आँगन ते गयो रोखि।
दए सब सुख, गए बंदी न बिमुख देव-
पितर अनंदी भए नंदीमुख-मख पोखि ;
घरनि - घरनि सुर - घरनि सराहैं सबै
धरनि मैं धन्य नँदघरनि तिहारी कोखि ॥ १ ॥

कलप (सं० कल्पन = उद्भावना करना [दुःख की]) = विलाप करना, बिलखना। बिकलप (विकल्प) = संदेह, भ्रांति। जोखि = तौल करके, परिमाण करके। रोखि (रोष) = रुष्ट होकर, अप्रसन्न होकर। नंदीमुख (नांदीमुख) = श्राद्ध-विशेष, जो पुत्र-जन्म के उत्सव में किया जाता है। मख = यज्ञ। नँदघरनि = नंद की पत्नी अर्थात् यशोदा।

पायन नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनि मैं धुनि की मधुराई,
साँवरे अंग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई ;

माथे किरीट, बड़े दृग चंचल, मंद हँसी मुख-चंद जुन्हाई,
जै जग-मंदिर-दीपक सुंदर श्रीब्रज-दूलह देव-सहाई ॥ २ ॥

भगवान् की प्रार्थना है। लसै = शोभै, सोहै। हुलसै = आनंद लेती है, हिलती-डुलती है।

बटु ह्वै नटु ह्वै कै रिझावैं जिन्हैं हरि, देव कहैं बतियाँ तुतरी,
बिधि१ईस के सीस बसी बहु बारन कोटि कला२ जल सिंधु तरीर;
जगमोहनि राधे तू पाइँ परों वृषभान के भौन अभै उतरी,
गुन बाँधे नचावति तीनिहुँ लोक लिए कर ज्यों कर की३पुतरी॥३॥

राधा के माहात्म्य का कथन है। बटु ह्वै = ब्रह्मचारी बनकर। नटु ह्वै कै = नट बनकर। तुतरी = तोतली। कवि राधिका तथा गंगाजी को एक ही मानता है। भगवान् राधा को नट का रूप धरके तथा गंगा को बट (ब्रह्मचारी, वामन) का रूप धरके रिझाते हैं, तथा दोनो के प्रसन्नतार्थ बालक के समान तोतली बातें करते हैं। श्रीकृष्ण तथा वामन, दोनो का बालरूप होने से ऐसा कथन और भी योग्य है। राधिका गंगाजी के रूप में विधि के (कमंडलु में) तथा महादेव के शीश के बहुत-से बालों (जटाओं) में बसीं, अथच (भगीरथ-रथ के पीछे) करोड़ कल्लोल करके समुद्र की 'राज्य-श्री को भी तिर गईं'। वही गंगाजी जग मोहनेवाली राधा होकर निर्भयता-पूर्वक वृषभानु

१. विधि के (ब्रह्मा के यहाँ अर्थात् उनके कमंडलु में) (अथच) ईश के शीश में बसीं।

२. करोड़ कलाएँ (भगीरथ के रथ के पीछे करोड़ प्रकार से क्रीड़ा-कल्लोल) करके सिंधु की राज्य-श्री को तर गईं। गंगाजी के समुद्र-संगम करने से यह भी कहा जा सकता है कि वह उसे पार कर गईं।

३. कल की बनी हुई पुतली।

के घर में उतरीं। उनके मैं पैर पड़ती हूँ। वही राधा तीनो लोकों को कल की पुतली के समान हाथ में लिए हुए (स्ववश किए) अपने गुणों से बाँधकर नचा रही हैं।

तीर धर्‍यो जु गहीर१ गुहा गिरि धीर धर्‍यो सु अधीर महा हैं,
पूँछती पीर भरे दृग नीर, त्यों एकै समीर करैं औ' सराहैं;
छोर भिजै यक पोंछती चीर लै, राधे रहैं तिरछी करि छाहैं,
भेटती भीर अहीरन की बर बीरज की बलबीर२ की बाहैं ।।४।।

गोवर्धन-धारण का वर्णन है। तीर धर्‍यो = किनारे पर (उतार-कर) रख दिया। बर बीरज = श्रेष्ठ वीर्य (पराक्रम)।

बारे बड़े उमड़े सब जैंबे को, हौं न तुम्हैं पठवौं बलिहारी,
मेरे तौ जीवन देव यही धनु, या व्रज पाई मैं भीख तिहारी;
जानै न रीति अथाइन की, नित गाइन मैं बनभूमि निहारी,
याहि कोऊ पहिचानै कहा, कछु जानै कहा मेरो कुंजबिहारी।।५।।

जादव वृद्ध जो लेन पठाए तौ धनु गोधनु लै सबु जैयै,
या लरिकाहि कहा करिहैं नृप गोप-समूह सबै सँग ह्वैयै;
तौ ही लौं जीवनु मो व्रज, जौ लगि खेलतु साथ लिए बलभैयै,
सर्बसु कंसु हरौ न अभै३ किन आँखिनु ओट करौ न कन्हैयै।।६।।

उपर्युक्त दोनो छंदों में वात्सल्य का परमोच्च प्रदर्शन है।

बेदन हूँ गनै गुन गनै अनगनै भेद,
भेद बिन जाको गुन निरगुनहू यहै;

१. गहिरा।
२. बलदेव के भाई अर्थात् कृष्ण।
३. अभी।

केतिक बिरंच्यो महा सुखन को संच्यौ जहाँ,
बंच्यो ब्रज भूप सोई परब्रह्म भूप है।
सोई सुनि सुनि अवराधा अब राधा-जस
जानत न देव कोई कहा धौं अनूप है;
तेज है कि तप है कि सील है कि संपति है,
राग है कि रंग है कि रस है कि रूप है॥ ७॥

राधा के यश का वर्णन तथा उनकी आराधना है।

बिरंच्यो = विशेष करके रंच (न्यून) किया। संच्यौ = समूह। अवराधा = आराधना (पूजा) की।

चतुर्थ चरण राधा के यश के विशेषणों से भरा है।

भूलि हूँ कढ़े जो कटु बोल, तौ कढ़ाऊँ जीभ,
छार डारौं आँखिन की आँसू झलकनि पै[१];
कौन कहै कैसी सौति सो तौ ठकुरायनि, लिखी
है ब्रज - बालन के भाल फलकनि[२] पै।
ह्वै रहौं नजीकी पै न जी की दुचिताई गहौं,
पी की प्रानप्यारी लहौं नीकी ललकनि पै[३];

१. यदि जीभ से भूलकर भी दुर्वचन निकले, तो उसे निकलवा लूँ, और यदि आँख में आँसु झलक जायँ, तो उस पर भी धूल डाल दूँ। प्रयोजन यह कि सौति द्वारा निरादर सहकर भी क्षोभ न करूँ।

२. जब ब्रह्मा ने मस्तक पर ही सौति का होना लिख दिया है, तब वह कैसी है, इसकी चर्चा कौन चलावे !

३. सौति का आदर देखते हुए निकट रहकर भी मन उद्विग्न न करूँ, अथच ज्येष्ठा सपत्नी को चित्त की उमंगों से भेटूँ।

दूजो नहिं देव, देव पूजों राधिका के पद,
पलक न लाऊँ धरि लाऊँ पलकनि पै१ ।।८।।

सखी गोपियों को शिक्षा देती है, और उनसे राधिका की प्रार्थना तथा पूजा करने को कहती है।

छार डारौं = धूल डाल दूँगी। फलकनि = तख़्ते, पट्टे। नजीकी = पास की। ललकनि = उद्दाम इच्छा। पलक न लाऊँ = थोड़ा भी विलंब न करूँ। अथवा पलक न मीचूँ, किंतु एकटक लगाके देखा करूँ।

(२)

सिद्धांत-समता

ह्वै उपजे रज-बीज ही ते, बिनसे हू सबै छिति छार कै छाँड़े,
एक-से देखु कछू न बिसेखु ज्यों एकै उन्हार२ कुम्हार के भाँड़े;
तापर ऊँच औ' नीच बिचारि वृथा बकि बाद बढ़ावत चाँड़े,
बेदनि३ मूँदु, कियो इन दूँदु कि सूद्र अपावन पावन पाँड़े।।६।।

द्वन्द्व अधर्म

मूढ़ कहैं मरिकै फिरि पाइए ह्याँ जु लुटाइए भौन भरे को,
ते खल खोइ खिस्यात खरे अवतार सुन्यो कहुँ छार परे को;

१. देव कवि कहता है कि कोई दूसरा देवता नहीं है, केवल राधिका के पैर पूजूँगी, अथच उनको आँखों पर रख लाऊँगी, और इसमें पल-भर भी देर न करूँगी।

२. अनुहारि, एक ही तरह।

३. वेदों को बंद करो, क्योंकि इन्होंने द्वंद्व मचाया है कि शूद्र अपावन हैं, और पाँड़े अर्थात् ब्राह्मण पवित्र हैं।

जीवत तौ व्रत भूख सुखौत सरीर महा सुररूख१ हरे को,
ऐसी असाधु असाधुन की बुधि साधन देत सराध मरे को ॥१०॥
को तप कै सुरराज भयो, जमराज को बंधनु कौने खुलायो,
मेरु मही मैं सही करिकै गथ ढेरु कुबेरु को कौने तुलायो;
पापु न पुन्य न नर्क न सर्ग मरो सुमरो फिरि कौने बुलायो,
गूढ़ ही बेद पुरानिनि बाँचि लबारनि लोग भले भुरकायो ॥११॥

पर-पक्ष-निरूपण।

श्रृंगार

देव सुन्यो सब नाटक चाटक चाट उचाटन मंत्र अतंक कोर२,
पै तरुनी त्रिय के दृग-कोर ते और नहीं चित-चोर चमंक को;
घूँघुट३ओट की आधिक चोट को सूल सम्हारै को मूल कलंक को,
बीछी४छुवै किन छोछी बिसौ वह तौ बिसु बिस्व बसीकर बंक को।

चाटक = चेटक = जादू। चाट = चाह, वशीकरण।

---

१. कल्पद्रुम। पर-पक्ष-निरूपण।

२. सब नाटक, चाटक, चाट, उच्चाटन (चित्त को हुमसा देना) आदि के मंत्रों के आतंक (भारी प्रभाव) को तो सुना, किंतु चित्त चुरानेवाली तथा उसे चकित करने को तरुणी स्त्री की चक्ष-कोर से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं देखी।

३. घूँघुट की आड़ से स्त्री के नेत्र की पूरी चोट को कौन कहे, उसकी आधी चोट की पीड़ा कलंक का मूल होने पर भी कौन सँभाल सकता है ?

४. बीछी भले ही छुवै (डंक मारे), विष भी उसके सामने छोछी (तिरस्कृत) है, क्योंकि उस बंक (तिरछी चितवनवाली) स्त्री का विष संसार को वश करनेवाला है।

कवि

जाके न काम न क्रोध बिरोध न लोभ छुवै नहिं छोभ को छाहौ,
मोह न जाहि रहै जग-बाहिर, मोल जवाहिर तौ अति चाहौ;
बानी पुनीत ज्यौं देवधुनी १ रस आरद २ सारद के गुन गाहौ,
सील-ससी, सबिता-छबिता, कबिताहि रचै, कबि ताहि सराहौ।

छाहौ=छाँह भी। जग-बाहिर=जो लोकोत्तर हो।
कवि का उच्च कर्तव्य वर्णित किया गया है।

सारद के गुन गाहौ=सरस्वती के गुणों का अवगाहन करो (अर्थात् कवि में ये गुण खोजो)। प्रयोजन यह है कि कवि में शारदा के गुण होने चाहिए।

जानिए न जात पहिंचानिए न आवत,
बितीत्यो दिन-राति पै न रीत्यो परिजातु है;
जगत प्रवाह पथ अकथ अथाह देव,
दया के निबाह कहूँ कोई तरि जातु है।
केते अभिमानी भए पानी के बलूला, कोई
बानी बीजु धरम धरा पै धरि जातु है
सबद रसायनि के अरथ उपायनि,
अमर तरु, कायनि अमर करि जातु है ॥१४॥

कवि-माहात्म्य का वर्णन है। निबाह=निर्वाह। बलूला=बुल्ला। सबद=शब्द।

---

१. गंगा।
२. आर्द्र, गीला, भीगा।

सत्य

जो कछु पुन्य अरन्य१ जल स्थल तीरथ खेत निकेत कहावै,
पूजन-जाजन औ' जप-दान अन्हान परिक्रम गान गनावै ;
और किते व्रत नेम उपास अरंभु कै देव को दंभु दिखावै,
हैं सिगरे परपंच के नाच जु पै मन मैं सुधि साँच न आवै ॥१५॥
है अभिमान तजे सनमान वृथा अभिमान को मान वहीए,
देव दया करै सेवक जानि सुसील सुभाय सलोनी लहीए ;
को सुनिकै बिन मोल बिकाय न बोलन कोइ को मोल न हीए,
पैए असीस,लचैए जो सीस, लचा रहिए तब ऊँचो कहीए ॥१६॥

कवि उपदेश के व्याज से सिद्धांत का वर्णन करता है। सलोनी=लावण्यमयी।

भक्ति

कथा मैं न, कंथा मैं न, तीरथ के पंथा मैं न,
पोथी मैं, न पाथ मैं, न साथ की बसीति मैं२ ;
जटा मैं न, मुंडन न, तिलक त्रिपुंडन न,
नदी-कूप-कुंडन अन्हान दान-रीति मैं।
पैठ-मठ-मंडल न, कुंडल कमंडल न,
माला-दंड मैं न, देव देहरे की भीति मैं ;
आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो,
पाइए प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं ॥१७॥
ऐसो जु हौं जानतो कि जैहै तू बिषै के संग,
एरे मन मेरे, हाथ-पायँ तेरे तोरतो ;

१. नैमिषारण्य आदि।
२. साथ की बसीति=सत्संगति।

आजु लौं हौं कत नरनाहन की नाहीं सुनि,
नेह सों निहारि हरि बदन निहोरतो।
चलन न देतो देव चंचल अचल करि,
चाबुक चेतावनीन मारि मुँह मोरतो;
भारो प्रेम-पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि,
राधा[illegible] के बारिधि मैं बोरतो ॥१८॥

[illegible] वैराग्य

बारयो[1] [illegible] बनायो आतुर [illegible] ओस को हार तन्यो मकरी ने[3],
पानी मैं पाहन-पोत चल्यो चढ़ि, कागद की छतुरी सिर दीने[4];
काँख मैं बाँधिकै पाँख पतंग के देव सुसंग पतंग को लीने[5],
मोम के मंदिर माखन को मुनि बैठ्यो हुतासन आसन कीने[6] ॥१९॥
आवत आयु को द्यौस अथौत, गए रवि यों अँधियारिए ऐहै,
दाम खरे दै खरीदु खरो गुरु, मोह की गोनी न फेरि बिकैहै;
देव छितीस की छाप बिना, जमराज जगाती[7] महादुख दैहै,
जात उठी पुर देह की पैंठ[8], अरे बनिये बनियै नहिं रैहै ॥२०॥

१. आध्यात्मिक छंद है।
२. संसार की बड़ाइयाँ।
३. माया।
४. जीवात्मा संसार में इसी प्रकार जाता है।
५. पतिंगा के पंख बग़ल में बाँधकर उड़ना चाहते हैं सूर्य के निकट, किंतु वे जल जायँगे। प्रयोजन सांसारिक वस्तुओं की असारता के प्रदर्शन का है।
६. मोम का मंदिर संसार है, माखन का मुनि शरीर और हुताशन जीवात्मा।
७. चुंगी का अफ़सर।
८. बाज़ार।

देव प्रीति-पंथा चीरि चीर गरे कंथा डारि१,
भसम चढ़ाय खान-पान छूजिए ;
दूरि दुख दुंद राखि मुंदरि२ पाहिर कान,
ध्यान सुंदरानन गुरू के पग पूजिए।
सृंगी की टकी३ लगाय भृंगीकीट४ कै मनु
बिरागिनि ह्वै बपु बिरहागिनि मैं भूजिए ;
केली तजि राधिका अकेली होय जोगिनि, तौ
अलख जगाय हेली५ चेली चलि हूजिए ॥२१॥

राधिकाजी की वियोगिनी दशा की संभावना पर गोपियों का योग धारण करना वर्णित है।

कंथा = कथरी। दुंद = उत्पात। सृंगी = एक प्रकार के सींग का बाजा, जो प्रायः योगियों के पास होता है।

काम पर्‌यो दुलही अरु दूलह, चाकर यार ते द्वार ही छूटे,
माया के बाजने बाजि गए, परभात ही भातखवा उठि बूटे।
आतसबाजी गई छिन में छुटि, देखि अजौं उठिकै आँख फूटे,
देव दिखैयन दाग बने रहे, बाग६ बने ते बरोठेई लूटे ॥२२॥

१. साड़ी आदि कपड़े फाड़कर तथा गले में कथरी डालकर।

२. मुद्रा, जो फ़क़ीर लोग कान में पहनते हैं।

३. टक, ध्वनि।

४. लखोरी। मन भृंग-कीट-सा करके। कीट का बच्चा लखोरी के साथ रहकर लखोरी हो जाता है, ऐसी कवि-कल्पना है।

५. सखी, हे अली।

६. बरात में खेलौनों की फुलवारी, जो लुटाई जाती है।

भृत्य

पावक मैं बसि आँच लगै न, बिना छत खाँड़े कि धार पै धावै,
मीत सों भीत, अभीत अमीत सों, दुक्ख सुखी, सुख मैं दुख पावै१;
जोगी ह्वै आठ हू जाम जगै, अठजामनि कामनि सौं मनु लावै,
आगिलो पाछिलो सोचि सबै फल कृत्य करै, तब भृत्य कहावै॥२३॥

इस छंद में व्याज द्वारा मालिकों की निंदा है कि वे अपने सेवकों में ऐसे असंभव गुण चाहते हैं।

(३)

विविध वर्णन

निसि बासर स्यात रसातल लौं सरसात घने घन बंधन नाख्यो,
ब्रजरु गोकुल ऊ ब्रज गोकुल ऊपर ज्यो परज्यो परलौ मुख भाख्यो;
करुनाकर त्यों बर सैल लियो करुना करिकै बरसै अभिलाख्यो२,
मुरको न कहूँ मुर को रिपु री अँगुरी न मुर्‌यो अँगुरी पर राख्यो।

गोवर्धन-धारण का वर्णन है। रसातल = पृथ्वी-तल, पाँचवाँ लोक। बंधन नाख्यो = बंधन तोड़ दिए, अर्थात् अतिवृष्टि की मर्यादा भंग

१. दुख में सुखी रहे और सुख में दुखी, अर्थात् सुख की यहाँ तक इच्छा न करे कि सुख से उसे दुख हो।

२. ब्रज की प्रजा ने ज्यों ही अपने मुख से यह कहा कि ब्रज गोकुल ग्रामों तथा ब्रज के गोवंश पर प्रलय पड़ी, त्यों ही करुणाकर भगवान् ने श्रेष्ठ पहाड़ करुणा करके उठा लिया, तथा यह अभिलाषा की कि अब घन और भी बरसे।

३. इस पद का पाठांतर ऐसा भी है—

'करुनाकर त्यों कर सैल लियो करुना करिकै करसै अभिलाख्यो।'

इस दशा में अर्थ यह आवेगा कि हाथ में सैल लेकर उसे खींचने की इच्छा की (अर्थात् खींचा), और तब ज़रा भी न मुड़कर उँगली पर रख लिया।

कर दी। व्रज-गोकुल = व्रज की गायों का वंश तथा व्रज के गोकुल-ग्राम। मुर को रिपु री = एरी, मुरारि। मुरयो = मुड़ा, हिला।

कंपत हियो, न हियो कंपत हमारो, क्यों
हँसी तुम्हैं अनोखी, नेकु सीत मैं ससन देहु;
अंबर हरैया हरि अंबर उज्यारो होत,
हेरिकै हँसै न कोऊ, हँसै तो हँसन देहु।
देव दुति देखिबे को लोयन मैं लागी लग्यो,
लोयन मैं लाज लागी, लोयन लसन देहु;
हमरे बसन देहु, देखत हमारे कान्ह,
अबहूँ बसन देहु, व्रज मैं बसन देहु॥ २५॥

चीर-हरण का वर्णन है। इसमें शृंगारिक तथा आध्यात्मिक, दोनो अर्थ बहुत अच्छे निकलते हैं।

गोपी-वचन—हमारा हृदय काँपता है (शृंगार के अर्थ में जाड़े से तथा आध्यात्मिक में योग साधनेवाली क्रियाओं की कठिनता से)।

भगवद्वचन—हमारा हृदय नहीं काँपता (इतना जाड़ा नहीं है, योग ऐसा कठिन नहीं)।

गो०—यह अनोखी हँसी तुम्हें क्यों (भाती) है?

भ०—अपने को ज़रा जाड़े में साँसें लेने दो। शृंगार में प्रयोजन यह है कि अभी नहीं निकलती हो, जब जाड़ा लगेगा, तब स्वयं निकल आओगी। आध्यात्मिक प्रयोजन यह है कि थोड़ा-सा शीतोष्णोद्भव कष्ट सहन किए बिना योग-सिद्धि अप्राप्य है।

गो०—हे कपड़े हरण करनेवाले भगवान्! आसमान उजियाला हुआ जाता है (जिससे लोग-बाग यहाँ आ जावेंगे), कोई देखकर हँसे न?

भ०—यदि आकाश उजियाला हो रहा है, और कोई हँसे, तो उसे हँसने दो। प्रयोजन यह है कि शुद्ध प्रेम और योग, दोनो के

लिये लोक-लाज अनावश्यक है, और उसका छोड़ना ही ठीक है। एक यह भी बात है कि खेचरी मुद्रा से ब्रह्म का ध्यान आकाश में होता है।

देव दुति देखिबे को लोयन में लागी लखौ = यह भी भगवान् का वचन है। शृंगार के अर्थ में यह प्रणय-निवेदन है कि देव कवि कहता है कि तुम्हारी शोभा देखने को हमारे नेत्रों में लगन है, सो देखो, और लोक-लाज की परवा छोड़ दो। आध्यात्मिक अर्थ में यह प्रयोजन है कि दैवी शोभा देखने को आँखों में (स्वाभाविक) लगन है, उसे देखो (मत भुलाओ), और लोक-लाज त्याग द्वारा योग से पुष्ट करो।

गो०—हमारी आँखों में शरम लगी है (हम शृंगारिक अथवा आध्यात्मिक साधनों के लिये लोक-लाज नहीं छोड़ सकतीं)।

भ०—यदि आँखों में लाज लगी है, तो उन्हें शोभा पाने दो, अर्थात् संसार को उसी दशा में आँखें देखने दो, जिसमें लोक-लाज आप-ही-आप छूट जायगी।

गो०—हे हमारे कान्ह ! देखते क्या हो ? हमारे कपड़े दो। (अरे, इतनी देर करते हो) अब भी कपड़े दे दो, और व्रज में बसने दो ; अर्थात् ऐसे उपद्रव करोगे, तो हम व्रज से उजड़ जावेंगी। आध्यात्मिक प्रयोजन यह है कि योग हमें नापसंद है, तुम हमें व्रज में ही बसकर भक्ति करने दो। एक अर्थ यह भी निकल सकता है कि गोपी कहती हैं कि यह योग या लोक-लाज का परित्याग हमारे वश का नहीं है, तुम देखते क्या हो, (कपड़े) दो। इस पर भगवान् का उत्तर है कि हमारे अर्थात् यदि तुम्हारे वश का नहीं है, तो हमारे का तो है।

गंग-तरंगनि बीच बरंगिनि ठाढ़ी करैं जपु रूप उदोती,
देव दिवाकर की किरनैं निकसैं बिकसैं मुख-पंकज जोती ;

नीर भरी निचुरैं अलकैं छुटिकै छलकैं मनो माँग ते मोती,
बिज्जुलि-से झलकैं लपटे कन कज्जल-से अँग उज्जल धोती[1]॥२६॥

नायिका के स्नान (प्रातःकाल के स्नान) का वर्णन है। यह छंद जाति-विलास का है, और ब्राह्मणी के विषय में कहा गया है।

कालिय काल महा बिष व्याल जहाँ जल ज्वाल जरै रजनी दिनु,
ऊरध के अध के उबरै नहिं, जाकी बयारि बरै तरु ज्यों तिनु;
ता फनि की फन-फाँसिनु पै फँदि जाइ फँसे उकसे न कहूँ छिनु,
हा ब्रजनाथ! सनाथ करो हम होती हैं नाथ अनाथ तुम्हैं बिनु॥२७॥

कालिय-मर्दन का वर्णन है। ऊरध के = ऊपर के (पक्षी वग़ैरा)। अध के = नीचे के (जलचर)। उबरै = बचै। उकसे न = निकला नहीं। फन-फाँसिनु पै = फन के फंदों पर।

मोर को मुकुट कटि पीत पटु कस्यो, कैसी
केसावलि ऊपर बदन सरदिंदु के;
सुंदर कपोलन पै कुंडल हलत, सुर
मुरली मधुर मिले हाँसी रस बिंदु के।
माँगती सुहागु नाग-सुंदरी सराहि भागु,
जोरे कर सरन चरन अरबिंदु के;
किंकिनी रटनि ताल तानिनि तननि देव,
नाचत गुबिंदु फन फननि फनिंदु के॥ २८॥

केसावलि = केश-समूह। तननि = विस्तार, खिंचाव।

1. उज्ज्वल धोती से ढके हुए कुछ-कुछ खुले अंग, जो नेत्र धुलने के काजल के कणों से लिपटे हुए हैं, वे बिजली की भाँति चमक रहे हैं।

फैलि-फैलि, फूलि-फूलि, फलि-फलि, हूलि-हूलि,
झपकि-झपकि आईं कुंजैं चहुँ कोद ते;
हिलि-मिलि हेलिनु सौं केलिनु करन गईं,
बेलिनु बिलोकि बधू ब्रज की बिनोद ते।
नंदजू की पौरि पर ठाढ़े हे रसिक देव
मोहनजू मोहि लीनी मोहनी बिमोद ते;
गाथनि सुनत भूली साथनि की, फूल गिरे
हाथनि के हाथनि ते, गोदनि के गोद ते ॥२६॥

हूलि=ढकेलकर। हेलिनु सौं=हाव-सहित; हेला एक हाव का नाम है। बिमोद=विशेष आनंद। गाथनि=चरित्रों को। यहाँ नायक के रूप से सखियों का मुग्ध होना वर्णित है।

अंबर अडंबर डमरु१ गरजत बारि
बरसि-बरसि सोखै बरसै बिसालु है;
देव पल घरी जाम दोऊ हगर सेत-स्याम
न्यारो एक एक मूँदि खोलत उतालु२ है।
कौतुक त्रिबिध चहूँ चौहटे नचायो मीचु
महि मैं मचायो चल अचलनि४ चालु है;

१. मेघ का शब्द डमरू के समान है।
२. सूर्य-चंद्र दोनों आँखें रात-दिन करते हैं।
३. 'उतालु' माने 'जल्दी-जल्दी' अर्थात् आँखों का खोलना और मूँदना जल्दी-जल्दी होता है।
४. अचल पदार्थ पृथ्वी के चलने से चल हैं। यह भी कहा जा सकता है कि पृथ्वी में चल तथा अचल, दो प्रकार के पदार्थों की रीति चलाई गई है।

खेलतु खिलैया ख्यालु थाकि न थिरातु काल्हु
माया गुन जालु अद्भुत इंद्रजालु है ॥३०॥

एक होत इंद्र, एक सूरज औ' चंद्र, एक
होत हैं कुबेर कछु बेर देत नाया के ;
अकुल कुलीन होत, पाँमर प्रबीन होत,
दीन होत चक्कवै चलत छत्र छाया के ।
संपति-समृद्धि, सिद्धि-निद्धि, बुद्धि-बृद्धि सब
भुक्ति-मुक्ति पौरि पर परी प्रभु जाया के ;
एक ही कृपा-कटाच्छ कोटि यच्छ रच्छ नर
पावैं घरबार दरबार देवमाया के ॥ ३१ ॥

पाँवर = पामर, नीच । चक्कवै = चक्रवर्ती राजा । समृद्धि = ऐश्वर्य । भुक्ति = भोग । पौरि पर = दरवाज़े पर ।

तार मृदंग महारव सों झनकारत झाँझन के गन जामें,
गुंजत ढोल कदंबक१ पुंज कुलाहल काहल२ नादति तामें ;
भेरी घनेरी नरी सुरनारि नरीसुर नारि३ अलापी सभा में,
गाजत मेघ घने सुर लाजत बाजत माया के द्वार दमामें ॥३२॥

१. कदंबक = समूह ।

२. ढोल-पुंज गुंजत, कुलाहल होत, तामें कदंबक काहला नादति । काहला = अप्सरा ।

३. घनेरी भेरी, नरीसुर (नली से बजनेवाले बाजे), न अरि (हित) नरीसुर नारि सभा में अलापी ।

मात ह्वै आपु जनी जगमात कियो पति तात सुतासुत जायो१,
ता उर माँह रमा ह्वै रमी विधि वाम नरायन राम रमायो ;
लोक तिहूँ जुग चारिहूँ में जस देखौ विचारि हमारोई गायो,
जो हम सीस बसे रजनीस के, तो वहि ईस लै सीस बसायो२॥३३॥

करुणा।

पीर पराई सों पीरो भयो मुख, दीनानि के दुख देखि पिलाती३,
भीजि रही करुना४ करुनारस वाल कि केलिनु सों कुम्हिलाती ;
लै-लै उसासन आँसुन सों उमगै सरिता भरिकै ढरि जाती५,
नाव लौं नैन भरैं उछरैं जल६ ऊपर ही पुतरी उतराती७॥३४॥

१. माया ने माता होकर और जगज्जननी से अवतार लेकर, अपने पिता ईश्वर से विवाह करके पुत्र और पुत्रियाँ उत्पन्न कीं, और उस ईश्वर के उर में रमा होकर रमीं, और उल्टी गति लेकर नारायण और राम को रमाया। कलंक का कथन है।

२. जब कलंक चंद्रमा के सीस पर बसा, तब उस चंद्र को महादेव ने माथे पर चढ़ाया।

३. इतना संकोच करती है, मानो लुप्त ही हो जाती है।

४. करुणादेवी करुणा (दया) के रस से भीगी हुई है।

५. नदी भरकर बह जाती है।

६. जब पानी भर जाता है, तब नीचे दब जाते हैं, और जब पानी उनसे निकल जाता है, तब ऊपर उछल आते हैं।

७. जल के ऊपर मानो आँख की पुतली उतराती है, अर्थात् केवल जल और पुतली दिखलाई देती है, अथच शेष आँख दिखलाई देती ही नहीं।

इस छंद में करुणा का बड़ा अच्छा वर्णन है।

भक्ति

प्यास न भूख, न भूपन की सुधि, भाव सुभूपन१ सों उपजावै,
देव इकंतहि कंतहि के गुन गावति नाचति नेह सजावै;
प्रेम-भरी पुलकै मुलकै उर ब्याकुल कै कुल-लोक लजावै२,
लै परबी परबी न गनै कर बीन लिए परबीन बजावै३॥३५॥

श्रद्धा

कान भुराई पै कान न आनति४ आनन आन कथा न कढ़ी है५,
एकहि रंग रँगी नख ते सिख एकहि संग बिबेक बढ़ी है;

१. अच्छे अलंकारों (सजावटों, गुणों) से भाव उत्पन्न करती है।

२. (पति को देखकर) प्रेम से भरी हुई पुलकै (रोमांचित होती है), तथा (पति के ओट हुए) उर ब्याकुल कै मुलकै (झाँकती है उसे देखने को) तथा अपने भारी प्रेम से पूरे लोक को लज्जित करती है। यहाँ पति से प्रयोजन परमेश्वर का है, क्योंकि वर्णन भक्ति का हो रहा है।

३. वह प्रवीणा, पर्व को पकड़के और पर्व की परवा भी न करके हाथ में वीणा लेकर बजाती है, अर्थात् पर्व में तथा बिना पर्व भी, हर समय बजाया करती है। वीणा में जो पर्दे होते हैं, उन्हें भी पर्व कहते हैं। पर्व का यह अर्थ मानने से इस पद का यह प्रयोजन बैठेगा कि (वीणा के) पर्व पर हाथ रखकर पर्व (होली, दिवाली आदि) की परवा न करके वह प्रवीणा वीणा हाथ में लेकर बजाती है, अर्थात् पर्व में तो बजाती ही है, वरन् बिना पर्व भी बजाया करती है।

४. भुराई (भुलाने, बहकाने की कानि मर्यादा) पर कान नहीं लाती है, अर्थात् किसी बात पर अविश्वास की रीति पर नहीं चलती है।

५. मुख से एक बात छोड़कर दूसरी कथा ही नहीं निकलती, अर्थात् चित्त में पूरा इकंगीपन है।

देखिए देव जबै, तब ज्यों हिं त्यों१, दूसरी पद्धतियै न पढ़ी है,
को बिरचै२कुल-कानि अचै मन के निहचै हिय चैन चढ़ी है॥३६॥

दया

हाय दई यहि काल के ख्याल में फूल-से फूलि सबै कुम्हिलाने,
देव अदेव बली बल-हीन चले गए मोह की हौसहि लाने३
या जग बीच बचै नहिं मीचु पै, जे उपजे ते मही में मिलाने,
रूप, कुरूप, गुनी, निगुनी, जे जहाँ जनमे, ते तहाँई बिलाने॥३७॥

वैभव

चाँदनी महल बैठी चाँदनी के कौतुक को,
चाँदनी-सी राधा-छबि चाँदनी बिसाल रैं;
चंद की कला-सी देव दासी संग फूली फिरैं,
फूल-से दुकूल पैन्हे फूलन की मालरैं।
छूटत फुँहारे, वै बिमल जल झलकत,
चमकैं चँदोवा मनि-मानिक महालरैं;
बीच जरतारन की, हीरन के हारन की,
जगमगी जोतिन की मोतिन की झालरैं॥३८॥

बिसाल रैं = (चाँदनी की) भारी छवि है। यहाँ रैं-शब्द है के अर्थ में आया है।

१. जब देखिए, तभी ज्यों-की-त्यों रहती है, अर्थात् उसके चित्त में कभी कोई अंतर नहीं आता।

२. नई बात कौन बनावे, क्योंकि ऐसे कर्म से कुल-कानि नष्ट हो जाती है।

३. मोह की हवस (लालसा) ही के लिये चले गए।

उज्जल अखंड खंड सातएँ महल महा-
मंडल सँवारो चंद-मंडल की चोट ही ;
भीतर ही लालनि के जालनि बिसाल जोति,
बाहेर जुन्हाई जगी जोतिन की जोटही।
बरनति बानी चौर ढारति भवानी, कर
जोरे रमा रानी ठाढ़ी रमन की ओट ही ;
देव दिगपालनि की देवी सुखदायनि ते
राधा ठकुरायनि के पायनि पलोटही ॥ ३९ ॥

महामंडल = एक बड़ा गोल स्थान, अर्थात् (सातवें खंड पर का) एक गोल कमरा । सवारो = सजा हुआ । चोट ही = आघात करनेवाला, अर्थात् स्पर्धा करनेवाला । लालनि = लाल रत्नों की । जालनि = जालीदार खिड़कियाँ । जोटही = जोड़ों से । बरनति = बरा वर्णन करती है । बानी = सरस्वती । रमन की ओट ही = अपने पति की आड़ में ।

मालिनी छंद

हँसि-हँसि पहिराई आपनी फूल-माला,
भुज[१] गहि गहिराई प्रेम-बीची बिसाला ;
रति-सदन अकेली काम-केली भुलानो,
ननुमय यह बानी मालिनी की सुहानी ॥ ४० ॥

ननु = नैनू (नवनीत) ।

मालिन-जाति की स्त्री का वर्णन है । कवि इस छंद में मालिनी

१. भुज गहि बिसाला (विस्तृत) प्रेम-बीची (प्रेम की लहर की) गहिराई (अगाधता) प्रकट की ।

छंद के लक्षण भी दिखलाता है। प्रत्येक चरण में दो नगण (।।।) (।।।) मगण (SSS) और दो यगण (।SS) (।SS) हैं।

गहिराई = गहरी की, अर्थात् अगाधता प्रकट की। बीचि = लहर।

आश्रयदाता

भूलि गयो भोज, बलि-बिक्रम बिसरि गए,
जाके आगे और तेन दौरत न दीदे हैं;
राजा राइ राने उमराइ उनमाने,
उनमाने निज गुन के गरब गिरबीदे हैं।
सुबस बजाज जाके सौदागर सुकबि,
चलेई आवैं दस हूँ दिसान के उनीदे हैं;
भोगीलाल भूप लाख पाखर लिवैया जिहि,
लाखन खरच रचि आखर खरीदे हैं॥ ४१॥

दीदे = आँख की पुतलियाँ, दृष्टि। उनमाने = अनुमाने, अंदाजे। उनको माना। गिरबीदे = गिरो रक्खे हुए, रेहन। पाखर = (पारख) परख करनेवाला।

गौरी-सौभाग्य

अचल सो ह्वै रह्यो पुरोहित हिमंचल को,
अंचल दृगंचल सों गाँठि-सी परत ही१;

१. पलकों की अंचल से गाँठ पड़ी, अर्थात् न पलक पड़ती है, न अंचल गिरता है। प्रयोजन यह है कि निर्निमेष आँख अंचल के भीतरवाले अंगों पर लग गई। इसी कारण पुरोहित स्तब्ध हो गया, क्योंकि काम को जीतनेवाले इतने बड़े योगी के काम-वश हो जाने की संभावना उसके चित्त में न थी।

बधू नवऊढ़ को निहारि मुनि मूढ़ भए,
बचननि बेद बिधि गूढ़ उचरत ही१।
चंद-कला च्वै परी असंग गंग ह्वै परी,
भुजंगी भाजि भ्वै परी बरंगी को बरत ही२ ;
कामरिपु देव गुन दामरि पहिरि, काम
कामरि करी है भुज भामरि भरत ही ३ ॥ ४२ ॥

हिमंचल (हिमालय)=पार्वती के पिता। अंचल=आँचल (पार्वती का)। दृगंचल=पलक। नवऊढ़=नई व्याही बधू। भ्वै=पृथ्वी। बरंगी=उत्तमांगी। कामरिपु=महादेव। गुन=गुनकर, जान-बूझकर। दामरि=रस्सी। कामरि=कंबल। मुनिबिवाह-कार्य कराते थे।

गूढ़ बन सैल बूढ़े बैल को गहाई गैल,
भूत न चुरैल छैल छाके छबि आज के ;

१. पुरोहित मुनि मुख से तो वेद पाठ करते थे, किंतु इतने बड़े योगी के काम-वश होने से आचरण वेद-विरुद्ध पाकर वेदार्थ की अनर्गलता देखकर (मुनि) मूर्ख बन गए।

२. सर्पिणी लटों से हारकर पृथ्वी पर गिरी। चंद्रकला पार्वती के मुख से हारकर गिर गई। प्रतीपालंकार है। गंगा पार्वती की बड़ी बहन थीं, और उधर शैव शीश पर चढ़ी रहने से अपनी ही अनुजा की सौत हो जाने से असंग हुईं।

३. कामरिपु (महादेव ने) भुज भामरि भरत ही, (पाणिग्रहण करते ही मानो) गुन (जान-बूझकर) दामरि पहिरी, (रस्सी पहनी है, अर्थात् अपने को पाश में डाला है, और) काम कामरि करी है (काम का कंबल ओढ़ा है, अर्थात् अपने को काम-वश कर लिया है)।

यथा कुमारसम्भवे—"पराजितेनापि कृतौ हरस्य, यो कंठपाशौ मकरध्वजेन।"

भंग के न रंग दै भगीरथ को गंग उत-

मंग जटा राखत न राख तन खोज के१।

देव न बियोगी अब योगी ते सँयोगी भए,

भोगी भोग अंक परजंक चितचोज के२;

ब्याल गज-खाल मुंड-माल औ' डमरु डारि

ह्वै रहे भ्रमर मुख सुंदर सरोज के॥ ४३॥

भोगी = सर्प। भोग = फण। चितचोज के = चित्त को चकित करनेवाला। बूढ़ा बैल उनका पुराना वाहन था, उसे स्वयं प्राचीन योगी होकर भी छोड़ दिया।

(४)

सीता-सौभाग्य

अनुराग के रंगनि रूप तरंगनि अंगनि ओप मनौ उफनी,

कबि देव हिये सियरानी सबै सियरानी को देखि सुहाग सनी;

बर धामनि बाम चढ़ी बरसैं मुसुकानि सुधा घनसार घनी,

सखियान के आनन-इंदुन ते अँखियान की वंदनवार तनी॥४४॥

ओप = आभा। उफनो = बढ़ी, उफनाई। सियरानी = जुड़ानीं, प्रसन्न हुईं। घनसार = कपूर।

१. भाँग का मज़ा छोड़ तथा भगीरथ को गंगा देकर न तो उत्तमांग (शिर) में जटा रखते हैं, न शरीर में भस्म का खोज (पता) है।

२. देव कवि कहता है कि शिव वियोगी नहीं हैं, क्योंकि वह अब योगी से संयोगी हो गए हैं, अथच शरीर में सर्प का भोग (फण या संसर्ग) को था, उसके स्थान पर चित्त प्रसन्न करनेवाली शय्या है।

कवि ने इस छंद में प्रेम से जीवन में जो परिवर्तन होता है, उसका फल शिव-से महायोगी पर दिखलाया है।

सीय के भाग के अच्छत अंकुर पुन्यनि के फल-फूल कढ़ाए,
भूपन की मुख ओप मृगम्मद चंदन मंद हँसीन बढ़ाए;
देव बिधीस के जान के ईस मुनीसन आसिस-मंत्र पढ़ाए,
श्रीरघुनाथ के हाथन पै मृगनैनिन नैन-सरोज चढ़ाए ॥४५॥

समाभेद सांग रूपक है।

अच्छत = विनाश न होनेवाला। बिधीस = ब्रह्मा तथा महादेव। ईस = प्रभु; रामचंद्र से प्रयोजन है।

सीता का भाग्य ही अक्षत है, पुण्यों के ही फल-फूल निकले हैं, राजाओं की मुख-प्रभा ही (जो पराजय के कारण काली हो गई है) कस्तूरी है। मंद हास्य चंदन है, तथा मृगनैनियों के नेत्र ही कमल हैं, जो भगवान् के हाथों पर चढ़े हैं (अर्थात् स्त्रियाँ उनके विजयी हाथों को देख रही हैं)। ब्रह्मा और महादेव के ईश (राम) समझे जाकर मुनीशों के द्वारा आशीर्वाद-मंत्र पढ़ाए गए।

सुख को सदन सुत-बधू को बदन देखि,
दसरथ दसौं दिसि सुजस बगारि कै;
सुदिन दिनेस-कुल दिनमनिजू को देखियत,
दीप दीप दान दीपक उज्यारि कै।

कवि राजा दशरथ के यश का वर्णन करता हुआ उनकी दान-शीलता का प्राधान्य प्रकट करता है। सीता की मुख दिखरावनी के शुभ समय से संबंध है।

दिनेस-कुल = सूर्य-वंश। दिनमनि = सूर्य; प्रयोजन दशरथ से है। दीप = दीपक, द्वीप।

साँचे देव दीनबंधु दीनता न राखी कहूँ,
आदर१ उदार बसु बादर के बारि कै;
मंदोदरी दरी में दुरयो है दौरि दारिद,
निकारि दियो उदर दुरोदर को फारि कै२ ॥ ४६ ॥

(५)

प्रकृति-निरीक्षण

रूपर छबीले छीब पीवत सदीव रस,
लंपट निपट प्रीति कपट हरे परत;
भंग भए मधुप अंग डुलत खुलत साँस३,
मृदुल चरन चारु धरनि धरे परत।
देव मधुकर टूक टूकत मधूक धोखे,
माधवी मधुर मधु लालच लरे परत;
दुहू पर जैसे जलरुह परसत, इहाँ
मुहु पर भाईं परे पुहुप झरे परत ॥ ४७ ॥

वारि कै = जल से । दुरोदर = शंख ।

यहाँ नायक से बहुत-सी नायिकाओं पर पृथक् पृथक् प्रीति रखने का उपालंभ वर्णित है । छीब = उन्मत्त । पहले चरण में भ्रमर-रूपी नायक की कपट-भरी झूठी प्रीति का कथन है । दूसरे चरण में उसकी शारीरिक दशा का कथन आया है ।

मधूक (महुवा) के धोखे से मधुकर (मीठे नीबू पर)

१. सत्कार, औदार्य तथा संपत्ति-रूपी बादलों के जल से ।

२. दारिद (दरिद्र) दुरोदर के उदर को फारिकै निकारि दियो, दौरि (दौड़कर) मंदोदरी (छोटे पेटवाली) दरी में (उदर-रूपी गुफा में) दुरयो (छिपा) है । दुरोदर = दपोर शंख ।

३. शरीर के डोलते ही साँस फूलती है ।

हुकी लगाकर बैठता है, और मधुर माधवी (मद्य) तथा मधु (शहद) के लालच से लड़ा पड़ता है।

दुहु पर = दोनो पखनों से। जैसे दोनो पंखों से तुम कमल का स्पर्श करते हो, वैसे ही यहाँ महुवे के मुख पर तुम्हारी परछाईं पड़ते ही उसके फूल झड़े पड़ते हैं, अर्थात् जो भ्रमर कमल का लोभी है, वह यदि महुवे के पास जाय, तो न उसकी शोभा है, न महुवे की। सखी भ्रमर के व्याज से नायक को केवल पद्मिनी-नायिका से अनुकूल होने की शिक्षा दे रही है।

ग्रीषम द्वै पहरी मिस जोन्ह महाबिष ज्वालन सों परिवेठी,
देखत दूष, पिये हू पियूष अहूप, महूप मिली महुरेठी;
देव दुराएहु जोति सो होति अँगेठी से अंगनि आगि अँगेठी,
कातिक-राति जगी जम जोय जुठैल जठेरी सुजेठ की जेठी॥४८॥

द्वै पहरी = दुपहरी = दो पहर। वियोग के कारण से जोन्हाई महाविष की ज्वालों से परिवेष्टित (ढकी हुई) समझ पड़ती है।

महूष या महोप भारद्वाज-पक्षी का नाम है। उसकी बोली की ध्वनि अहूष की-सी होती है। अतएव अहूष एक ध्वन्यात्मक शब्द है, जो भारद्वाज-पक्षी की कर्कश बोली प्रकट करता है। यह बोली महुरेठी (माहुर अर्थात् विष-पूर्ण) कही गई है। पद का प्रयोजन यह है कि नायिका को विरह-वश चाँदनी महोप की विष-पूर्ण ध्वनि से मिली हुई उसका अमृत-पान करने पर भी देखने में दुःखद है। वह चाँदनी दीप्ति छिपाने पर भी विरह-वश अँगीठी-से तप्त अंगों में दूसरी अँगीठी की अग्नि-सी होती है। विरह-वश नायिका को कार्त्तिक-चंद्र-ज्योत्स्ना-पूर्ण रात ऐसी बुरी लगती है, मानो वह जेठ मास की गरम रात से भी उष्णता में जेठी (अधिक) हो। वह रात जुठैल (जूठी, अशुचि),

जठेरी (अप्रिय, नटखट) तथा जम जोय (यमराज की-सी स्त्री, प्राणाकर्षिणी) है।

दूसरे पद में चाँदनी के साथ अमृत-पान का इसलिये कथन किया गया है कि चंद्रमा के सुधाधर होने से वह सुधाकर या सुधांशु भी है, जिससे चाँदनी के दर्शन से मानो उसका अमृत-पान होता है। नायिका को विरह-वश चाँदनी से कोई मज़ा आता नहीं, प्रत्युत चाँदनी रात में महूष की अहूष-ध्वनिवाली कर्कशता-मात्र उसके चित्त में सर्वोपरि बात रह जाती है।

कॅते करे सुकपोत कपोतक पिंजर-पिंजर बीच बिबादनि१ ,
को गनै चातक चक्र चकोर कला पिक मोर मराल प्रबादनि२ ;
बीन ज्यों बोलति बोल प्रबीन नबीन सुधा-रस-बाद सवादनि३ ,
वारों सुकंठी के कंठ खुले४कलकंठन के कलकंठ निनादनि ॥४६॥

नायिका की वाणी की प्रशंसा की गई है। बाद = संभाषण। वारों = निछावर करूँ। सुकंठी के = एक सुंदर तोता, जिसके गले में कंठी होती है। कलकंठन के = सुंदर गलेवालों (शब्द करनेवालों) के।

१. छोटे-बड़े सुंदर कबूतरों ने पिंजड़े-पिंजड़े में कितना ही विवाद किया (किंतु उस नायिका की वाणी की सरबरि वे न कर पाए)।

२. (उसकी वाणी के सामने) चातक (पपीहा), चक्र (चकई-चकवा) और चकोर (चंद्र को ताकनेवाला पक्षी) की कला तथा पिक (कोकिला), मयूर एवं मराल (हंस) की ध्वनियाँ गिनने योग्य नहीं हैं।

३. अमृत-रस का स्वाद तुच्छ है।

४. तोते का कंठ खुला कहा जाने से उसके जवान होने का आशय है, क्योंकि यौवन-प्राप्त तोते की कंठी ख़ूब खिलती है।

केसरि किंसुक औ' बरना[1] कचनारनि की रचना उर भूली,
सेवती देव गुलाब मलै[2] मिलि मालती मल्लि मलिंदनि झूली;
चंपक दाड़िम नूत महा उर पाँडर डार डरावनि फूली,
या मयमंत[3] बसंतमैं चाहत कंत चल्यो हमहीं किधौं भूली[4]॥५०॥

किंसुक = टेसू। सेवती = पुष्प-विशेष, जंगली गुलाब। मल्लि = बेला। नूत = नूतन, नवीन। पाँडर = एक प्रकार की पीली चमेली। पाँडर स्वयं डरानेवाली नहीं है, किंतु विरह के कारण व्याकुलता प्रकट करने से डरानेवाली कही गई है। इस पद का अन्वय यों है— महानूत चंपक दाड़िम उर डरावनि पाँडर डार फूली।

उर सों लगी ही बधू बिधुर अधर चूमि,
मधुर सुधान बातैं सुनि बैं सुभाव की;
बोलि उठीं कोकिला त्यों काकलिनु कलित,
कलापिन की कूकैं कल कोमल बिराव की[5]।

काकली = सूक्ष्म, मधुर, स्फुट ध्वनि।

---

१. पुष्प-वृक्ष-विशेष।

२. मलै = मलय-पर्वत, जहाँ चंदन होता है। इसी से मलय को भी मलयज मानकर चंदन कहते हैं।

३. उन्मत्त, मद-युक्त।

४. प्रयोजन यह है कि इतने कामोद्दीपक समय में पति कैसे जा सकता है, सो यद्यपि उसके जाने का विचार प्रकट हो चुका है, तथापि नायिका समझती है कि उसके यथार्थ मानने में वह स्वयं भूल करती होगी, क्योंकि वह सत्य नहीं होगा।

५. सुंदर मुलायम स्वर की कोकिला, मधुर तथा सुंदर मोरों की कूकैं बोल उठीं (आवाज़ करने लगीं)।

आइ गईं झूकैं मंद मारुत की देव नव-
मल्लिका मिलित मल पदुम के दाव[1] की ;
ऊखली सुबासु गृह अखिल खिलन लागीं,
पलिका के आस-पास कलिका गुलाब की ॥ ५१ ॥

प्रातःकाल का वर्णन है। बिधुर = काँपता हुआ। सुभाव की = स्वाभाविक या अच्छे ढंग की। कलित कलापिन = सुंदर मयूरों की। बिराव की = ऊँचे स्वर में बोली की। मल = मकरंद। मिलित मल पदुम के दाव की = कमल-वन के मकरंद-सहित। ऊखली = उखरी = फैली।

स्याम के संग सदा हम डोलें जहाँ पिक बोलैं, अलीगन गुंजैं,
लाहनि माह उछाहनि सों छहरैं जहँ पीरो पराग की पुंजैं ;
बेलिन मैं, रसकेलिन मैं, कबि देव कछू चित की गति लुंजैं,
कालिंदी-कूल महा अनुकूल ते फूलतीं मंजुल बंजुल कुंजैं ॥५२॥

लाहनि माह = मंगल से, अर्थात् आनंद-सहित। उछाहनि सों = उत्साह सहित। बंजुल = अशोक-वृक्ष।

(६)

समीर

अरुन उदोत सकरुन ह्वै अरुन नैन
तरुन-तरुन तन तूमत फिरत हैर[2] ;

---

१. दाव दावानल को कहते हैं। उसका आकार भारी होने से यहाँ कमल के दाव से कमल-वन का प्रयोजन लिया जा सकता है।

२. प्रातःकाल अरुण के उदय में होकर (निकलकर) (रात के जगे हुए) लाल नेत्रवाले प्रत्येक युवक का शरीर धुनता फिरता है, अर्थात् प्रातःकाल उनका अपनी प्यारियों से वियाग हो जाता है, जिससे सुखद पवन भी उनको दुःखद हो पड़ता है।

कुंज-कुंज केलि कै नवेली बाल बेलिन सों
नायक पवन बन भूमत फिरत है।
अंब-कुल बकुल समीड़ि पीड़ि पाड़रनि
मल्लिकानि मीड़ि घन घूमत फिरत है;
दुमन-दुमन दल दूमत मधुप देव,
सुमन-सुमन मुख चूमत फिरत है ॥ ५३ ॥

सकरन = सकारे ; प्रातःकाल । तूमत—यह शब्द 'तूमना'-क्रिया-पद से लिया गया है, धुनते हुए का प्रयोजन है। विरह-वेदना व्यंजित की गई है। अंबकुल = आम्र-वृक्षों का समूह। बकुल = मौलसिरी। समीड़ि = सम्यक्-प्रकारेण मीडि (मलकर)। पाड़रनि = पाँड़री (पीली चमेली)। दुमन = वृक्षों (द्रुमों) को। दूमत = हिलाता हुआ। यहाँ दूमत को देहलीदीपकन्यायेन द्रुमों तथा भ्रमर, दोनो पर आरोपित करके यह भी अर्थ कर सकते हैं कि वृक्षों तथा भ्रमरों, दोनो को पवन हिलाता है।

सजोगिन की तू हरै उर-पीर, बियोगिन के सचरै उर-पीर,
कलीन खिलाइ करै मधु-पान, गलीन भरै मधुपान की भीर;
नचै मिलि बेलि बधूनि अचै सुरदेव नचावत आधि अधीर,
तिहू गुन देखिए दोष-भरो अरे सीतल, मंद, सुगंध समीर ॥५४॥

सचरै = संचार करै, फैलावै। मधुपान (मधुप) = भौरों की। अचै = तप्त करके। आधि = मानसिक व्यथा।

---

१. चमेली के फूलों को मलकर (उनकी सुगंध से) घना (होकर) घूमता फिरता है।

२. भौरों का देवता पवन। पवन के संसर्ग से भ्रमरों के प्रिय पुष्प प्रसन्न होते हैं, सो भ्रमर का पवन हितकर देवता हो सकता है।

(७)

चंद-चाँदनी

नगर निकेत रेत खेत सब सेत-सेत,
ससि के उदेत कछु देत न दिखाई है ;
तारका मुकुत-माल झिलिमिलि झालरनि
बिमल बितान नभ आभा अधिकाई है[1] ।
सामोद प्रमोद ब्रज-बीथिन बिनोद देव
चहूँ कोद चाँदनी की चादरि बिछाई है ;
राधा मधुमालतिहि माधव मधुप मिले
पालिक पुलिन झीनी परिमल झाई है ॥ ५५ ॥

राधा और माधव के मिलन का वर्णन है । निकेत = घर । रेत = बालू । बितान = चँदोवा । सामोद = आमोद (आनंद)-सहित । पालिक = पलँग । पुलिन = रेतीला नदी का किनारा । परिमल = पराग ।

राधा मधुमालती (फूल) है, जिसे भ्रमर-रूपी माधव मिले हैं । पुलिन ही पलका है, तथा उस पर पराग ही हलका उजियाला है ।

आस-पास पूरन प्रकास के पगार सूझैं,
बनन अगार डीठ गली है निबरते[2] ;

पगार = रास्ते । अगार = भवन ।

---

१. झिलमिले प्रकाशवाले मोतियों के समान ताराओं की झालरों से साफ़ आकाश ज्योति-पूर्ण चँदेवा-सा दिखता है ।

२. वनों, भवनों, गलियों में दृष्टि से निवृत्त होते हैं, अर्थात् नज़र में गुज़र जाते हैं ।

पारावार पारद अपार दसौ दिसि बूड़ीं,
बिधु बरम्हंड उतरात बिधि बरनें[1]।
सारद[2] जुन्हाई जह्नु पूरन सरूप धाई,
जाई सुधा-सिंधु नभ सेत गिरिबर तें[3];
उमड़ो परंतु जोति मंडल अखंड, सुधा-
मंडल मही में इंदु-मंडल बिबरतें[4] ॥ ५६ ॥

परम नवीन विचार ।

कातिक पून्यो कि राति ससा दिसि पूरब अंबर में जिय जान्यो,
चित्त भ्रम्यो पुमनिंदु मनिंदु फनिंदु उक्यो भ्रम ही सों भुलान्यो;
देव कछू बिसवास नहीं, सोइ पुंज प्रकास अकास में तान्यो,
रूप-सुधा अँखियान अँचै निहिचै मुख राधिका को पहिचान्यो॥५७॥

१. उस प्रकाश में पारावार (समुद्र), पारा तथा अपार दसों दिशाएँ डूब गईं, किंतु चंद्रमा अथच ब्रह्मांड उसी में ब्रह्मा के वरदान से उतराते हैं। प्रयोजन यह है कि वह प्रकाश का पुंज अपार है।

२. श्वेत गिरिवर के सुधा-सिंधु से उत्पन्न जह्नु की शारदी जुन्हाई (गंगाजी को जह्नु की शारदी ज्योत्स्ना कहा गया है) पूर्ण रूप से धाई। प्रयोजन यह है कि गंगा-रूपी ज्योत्स्ना भी उसी प्रकाश-पुंज से निकली है, जिस प्रकाश का अंश श्वेत गिरि पर सुधा-सरोवर के रूप में स्थित है।

३. कवि ने इस छंद में यह विचार लिखा है कि संसार में प्रकाश-पुंज सर्वत्र व्याप्त है, किंतु आकाश-रूपी पर्दा उसे पृथ्वी पर आने नहीं देता। उसी पर्दे में चंद्रमा एक छिद्र है, जिसमें से होकर वह प्रकाश-पुंज सुधा-मंडल के समान पृथ्वी पर उमड़ा पड़ता है।

४. पाठांतर—"सारद जुन्हाई जह्नु धाई धार सहस सों।"

पुन्निंदु = पूर्ण इंदु = पूर्णेंदु = पुन्नेंदु = (पूर्णिमा का चंद्रमा)। मनिंद फनिंदु = चंद्रकांत-सी मणि धारण करनेवाला सर्प। अँचै = पान करके।

पहले राधिका का मुख देखकर भगवान् उसे पूर्व दिशा में उदित कार्तिकी पूर्णिमा का चंद्र समझे, किंतु जब मणि-मंडित केश-पाश उस चंद्र से मणि-युक्त सर्प की भाँति उठता हुआ दिखाई दिया, तब उनका चित्त भ्रम में पड़ा, और उसी भ्रम से भूल गया। जब वैसा ही प्रकाश-पुंज आकाश में भी पूर्ण चंद्र के कारण तना हुआ दिखाई दिया, तब कुछ विश्वास न पड़ा कि ये दो चंद्र कहाँ से आए। अनंतर आँखों से रूप-अमृत-सा पीकर उन्होंने निश्चय-पूर्वक राधिकाजी का मुख पहँचाना।

फटिक सिलानि सों सुधारयौ सुधा-मंदिर,
उदधि दधि को-सो अधिकाई उमगै अमंद;
बाहिर तें भीतर लौं भीति न दिखैए देव,
दूध को-सो फेनु फैलो आँगन फरसबंद[1]।
तारा-सी तरुनि तामें ठाढ़ी झिलमिलि होति,
मोतिन की जोति मिल्यो मल्लिका को मकरंद;
आरसी-से अंबर में आभा-सी उज्यारी लगै,
प्यारी राधिका को प्रतिबिंब सो लगत चंद ॥४८॥

प्रतीप-अलंकार।

फटिक = स्फटिक, बिल्लौर।

1. उस उजियाले के फ़र्श तक आ है।

(८)
विनोद

गूजरी ! ऊजरे जोबन को कछु मोल कहौ, दधि को तब दैहौं,
देव इतो इतराहु नहीं, ई नहीं मृदु बोल न मोल बिकैहौं;
मोल कहा, अनमोल बिकाहुगी, ऐंचि जबै अधरा-रस लैहौं,
कैसी कही, फिरि तौ कहौ कान्ह, अबै कछू हौंहूँ कका कि सौं कैहौं।

नायक—हे गूजरी, उज्ज्वल जोबन का कुछ मोल कहो, तब हम दधि देंगे (वापस करेंगे)। प्रयोजन यह है कि उन्होंने दही छीन ली थी, जिसके फेरने का प्रश्न है।

नायिका—इतना मत इठलाओ। न तो इन मृदु बोलों से बिकूँगी, न मोल से।

नायक—मोल की बात ही क्या है, जब मैं तुम्हें खींचकर तुम्हारा अधर-रस लूँगा, तब तुम बिना मोल ही बिक जाओगी।

नायिका—हे कृष्ण, कैसी कही, फिर तो कहो। काकाजी की शपथ खाकर कहती हूँ कि अभी मैं भी कुछ कहूँगी।"

आइ खुभी[१] खिरकी मैं खरी खिन-ही-खिन खीन सखीन लखाहीं,
चाह भरी उचकै चित चौंकि चितै चतुराई उतै चित चाहीं;
बातन ही बहरावति मोहिं, बिमोहित गातन की परछाहीं,
ओड़ी किए उर ऐड़ती हौ भुज एंड़ि कहूँ उड़ि जैहौ तौ नाहीं ॥६०॥

खिन-ही-खिन = क्षण-क्षण में। खीन = क्षीण, दुर्बल। चितै चतुराई = चतुराई से देखकर। उतै चित चाहीं = उस तरफ़ चित्त की चाहों से। बहरावति = बहलावति है। गातन की परछाहीं = श्याम के शरीर की छटा। ओड़ी किए = आड़ देकर। ऐंड़ती हौ = ऐंठाती हौ।

लक्षिता नायिका।

१. गड़ी अर्थात् देर से खड़ी।

अंगन उघारो जनि लंगर लगेई माँग-
मोती-लर टूटत लरकि आई लुरकी ;
देव कर जोरि कर अंचर को छोर गहि,
छाती मुठि छूटति न नीठि ठनि ढुरकी ।
आँसू दृग पूरि भ्रमपूर चकचूर ह्वै[1],
कहति प्यारी दोऊ भुज दीने ओट उर की ;
मरी जाति लाजन अकाजन करैया दैया ,
छाँड़ि दे अनोखे नाँह बाँह जाति मुरकी ॥ ६१ ॥

लंगर = नायक के लिये संबोधन, हे ढीठ । लगेई माँग मोती = माँग में मोती लगे हुए हैं । लरकि आई = लटक आई । लुरकी = माँग में लटकनेवाला मोती का ज़ेवर । ढुरकी = भरनी, जुलाहों का एक औज़ार, जिससे वे लोग बाने का सूत फेंकते हैं । छाती मुठि छूटति न नीठि ठनि ढुरकी = आपकी मुठि (मूठ) कठिनता से भी छाती से नहीं छूटती ; भरनी की तरह इधर-उधर आती-जाती है ।

ठनि ढुरकी = ठनकर (कार्य में रत होकर) मानो ढरकी हो गई । प्रयोजन यह है कि भरनी के समान कार्य करती है ।

रच्यो कच मोर सुमोर-पखा धरि काक-पखा मुख राखि अराल[2],
धरी मुरली सधराधर[3] लै मुरली सुर लीन ह्वै देव रसाल ;
पितंबर काछनी पीत पटी धरि बालम-बेष बनावति बाल ,
सरोजन खोज निवारन को उर पैन्ही सरोजमई मृदु माल ॥६२॥

---

१. पूरे विभ्रम में चकनाचूर होकर ।
२. कुटिल ।
३. ऊपर और नीचे के होठ में मिलाकर ।

नायिका नायक (कृष्ण) का वेश धारण करके विनोद करती है। छंद के चतुर्थ चरण में मीलित अलंकार है।

कच = केश। काक-पक्षा = काक-पक्ष = कुल्लैं।

(६)

पावस

सुनिकै धुनि चातक मोरनि की चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों,
अनुराग-भरे हरि बागनि में सखि रागत राग अचूकनि सों ;
कबि देव घटा उनई जु नई बनभूमि भई दल दूकनि सों,
रँगराती हरी हहराती लताझुकि जाती समीर के झूकनि सों॥६३॥

पावस-ऋतु का वर्णन है।

अचूकनि सों = पटुता-सहित। उनई = उदित हुई। दूकनि = दो-एक। हहराती = ध्वन्यात्मक शब्द। हा हा हा हा करती है।

पावस प्रथम पिय ऐबे की अवधि सो तो
आवत ही आवैं तो बुलाऊँ अति आदरनि१ ;
नाहीं तौ न हील होन दे री झील झाबरनि,
ग्रीषमहि राखु खाली भाखु खल खादरनि।
बीजुरी बरजु, कहु मेघ न गरजु,
इन गाजमारे मोर - मुख मोरि री निरादरनि ;
कंठ रोकि कोकिलनि, चोंच नोचि चातकनि,
दूरि करि दादुर, बिदा करि री बादरनि॥६४॥

१. पहले ही पावस में प्रियतम के आने की अवधि थी। सो यदि पावस के आते ही वह भी आवैं, तो पावस (वर्षा) को भारी आदर से बुलाऊँ। खादर खल इस कारण से कहे गए हैं कि उनके कारण कृमियों द्वारा बुख़ार आदि बढ़ते हैं, तथा अन्य कष्ट होते हैं।

नायक की अनुपस्थिति के कारण नायिका पावस का निरादर करती है। बड़ा सबल छंद है।

ऐबे की अवधि = आगमन का नियत समय। हील = कीचड़। झाबर = दलदल। खादर = वह नीची ज़मीन, जिसमें वर्षा का पानी बहुत दिनों तक रुका रहता है। बरजु = रोक।

नाचत मोर, नचावत चातिक, गावत दादुर आरभटी¹ मैं,
कोकिल की किलकार सुने बिरही बपुरे बिष घूँटैं घटी मैं;
अंबर नील घनी घनमाल सु भूमि बनी बनमाल तटी मैंर²,
साँवर पीत मिले झलकैं घन दामिनि से घन स्याम पटी मैं॥६४॥

विरह उत्पन्न करनेवाले पदार्थों तथा कारणों का वर्षा के संबंध में वर्णन है। चातिक=पपीहा। दादुर=मेंढक। बपुरे = बेचारे, अनाथ। 'बराक' (सं०) शब्द से बना है। घटी = छोटा घट (शरीर)। पटी = पर्दा।

उतै तौ सघन घन घिरिकै गगन, इतै
बन - उपबन बने बनक बनाए हैं;
तैसेई उलहि आए अंकुर हरित - पीत,
देव कहै बिबिध बटोहिन सुहाए हैं।
बोलैं इत मोर, उत गरजैं मधुर धुनि,
मानौ मैन-भूप जग जीति घर आए हैं;

१. आरभटी एक वृत्ति है, जिसमें टवर्ग-पूर्ण ओज की विशेषता रहती है। मेंढकों की टर्र-टर्र बोली में आरभटी-वृत्ति का उदाहरण कवि ने माना है।

२. वनों की माला (बहुत वनों) के तट में भूमि सुंदरी बनी है। घने काले पर्दे में साँवले और पीले बादल बिजली-से झलक रहे हैं।

अंबर बिराजै बर. अंबरन छाए छिति,
भौरे. हरे, लाल, ये जवाहिर बिछाए हैं ॥ ६६ ॥

वर्षा में प्रकृति-वर्णन ।

बनक = एक प्रकार का कपड़ा, जिसे साटन कहते हैं । उनहि = उग आए । अंबरन = मेघ । वर्षा का सादृश्य विजयी मन-महीप से दिखलाया गया है ।

आजु अभै सुघरी उघरी भ्रम१काज-निमित्त सुचित्त चलाकिन,
चाहत नाह चलो परदेस को नाहक नाह कहा अबला किन२ ;
देव सरोग उठी सगुनै कहि कामिनि दामिनि सोन-सलाकिन३,
भूमि रही बनमालिनि४भूमि पै भूमि रही घन-माल बलाकिन॥६७॥

बलाकिन = वक-पंक्ति-युक्त ।

सोखे सिंधु सिंधुर से, बंधुर ज्यौं बिंध्य, गंध-
मादन के बंधु से गरज गुरवानि कै ;

---

१. बाहर चलने का विचार ही भ्रम-काज है । उसके लिये पति का चित्त भले ही चला, किंतु वर्षा आ जाने से अच्छी घरी उघर आई, और गमन रुक गया ।

२. पति परदेश को चलना चाहता है, उससे अबला (नायिका) हे नाथ ! यह नाहक है, ऐसा भले ही कहे (पत्नी के मना करने पर भी पति परदेश जाना चाहता था, तब तक वर्षा के समय आने से अच्छी घरी आ गई) ।

३. सोन-सलाकिन (स्वर्ण की-सी शलाका) दामिनि (बिजली) को सगुन कहकर सरोग कामिनी (वियोग के भय से रोग-पीड़ित नायिका) उठी (रोग-शय्या से आराम होकर उठ खड़ी हुई) ।

४. बनमालवाली नायिका (वह नायिका, जो बन के फूलों की माल पहने है) ।

झमकारे झूमत गगन घने घूमत,
पुकारे मुख चूमत पपीहा मोरवानि के।
नदी - नद सागर डगर मिलि गए देव,
डगर न सूझत नगर पुरवानि के;
भारे जल - धरनि अँध्यारे धरनी - धरनि
धाराधर धावत धुमारे धुरवानि के ॥ ६८॥

सिंधुर = हाथी। बंधुर = सुंदर तथा नम्र (मेघों के झुकने से उनको तथा उँचाई न पकड़ने से विंध्य को नम्र कहा है)। गंध-मादन = एक पर्वत का नाम। यह पर्वत काला दिखता है। पुराणानुसार यह इलावृत और भद्राश्वखंड के बीच में है। गुर-वानि = भारी। झमकारे = झमाझम बरसनेवाले (बादल)। जल-धरनि = मेघ। धरनी-धरनि = भूधर, पर्वत। धाराधर = मेघ। धुमारे = धूमिल, धुएँ के रंग के।

(१०)

हिंडोरा

आली झुलावति झूँकनि सों झुकि जाति कटी झननाति झकोरे,
चंचल अंचल की चपला, चल बेनी बड़ी सो गड़ी चित चोरे;
या बिधि झूलत देखि गयो तब ते कबि देव सनेह के जोरे,
झूलत है हियरा हरि को हिय माहँ तिहारे हरा के हिंडोरे ॥६९॥

झूँकनि = झोंकों से। झननाति = कटि की किंकिणी शब्द करती है। झकोरे = झोंके के वेग से। चंचल अंचल की चपला = बिजली के समान फड़कता हुआ अंचल। शब्दार्थ यह है कि यह चंचल अंचल है, या चपला। चलबेनी = हिलती हुई बेणी।

झूलति ना वह झूलनि बाल की, फूलनि-माल की लाल पटी की,
देव कहै लचकै कटि चंचल, चोरा दृगंचल चाल नटी की;

अंचल की फहरानि हिए रहि जानि पयोधर पीन तटी की,
किंकिनि की झननानि झुलावनि, झूकनि सों झुकि जानि कटी की।

लाल पटी = लाल रंग का कपड़ा। पीन तटी = पुष्ट किनारेदार।

झूलनिहारी अनोखी नई उनई रहतीं इत ही रँगराती,
मेह में ल्यावैं सु तैसिये संग की रंग-भरी चुनरी चुचुवाती[1];
झूला चढ़े हरि साथ हहा करि देव झुलावति ही ते डराती[2],
भोरे हिंडोरे की डोरिन छाँड़ि खरे ससवाइ गरे लपटाती॥७१॥

भोरे = मूर्खता से, ग़लती से। ससवाइ = सीत्कार करके, डरकर।

(११)

वसंत और फाग

आइ बसंत लग्यो बर सावन नैनन ते सरिता उमहै री,
कौ लगि जीव छमावै छपा मैं छपाकर की छबि छाई रहै री;
चंदन सों छिरके छतिया अति आगि उठै उर-कौन सहै री,
सीतल मंद सुगंध समीर बहै, दिन दूगुनी देह दहै री॥७२॥

बर सावन = श्रेष्ठ श्रावण। वसंत आकर अच्छा सावन लग गया, अर्थात् वसंत मानो सावन हो गया। उमहै री = उमगती है। छमावै = सहन करावै। छिरके = सींचे।

(हे सखि!) वसंत-ऋतु आते ही नैनों से ऐसा जल-प्रवाह हो चला है, मानो वह सावन है, और वह प्रवाह नदी होकर उमड़ता है।

केकी-कुल कोकिल अलापैं कल कंठ धुनि,
कोलाहल होत सुकपोत मयमंत को;

केकी = मयूरी। कोकिल = कोयिया।

१. चूनरि मेघ के कारण टपकती है, क्योंकि पानी बरस चुका है।
२. हँसकर झुलाती है, किंतु हृदय से डरती भी है।

फूले कमलन पर नाचत बिमल अलि,
कमला बिसाल मैं प्रकास रति-कंत को।
त्रिबिध समीर चलै, सजल सरीर देव,
सुखद निनाद बाद आनँद अनंत को;
भीतरे भवन बास रहै उपबन औ'
सिसिर निसि बास रहै बासर बसंत को[1] ॥७३॥

मयमंत = उन्मत्त (मद-युक्त)। कमला = विभूति। निनाद = शब्द। बाद = व्यर्थ। इस आनंद के सामने ब्रह्मानंद-पर्यंत व्यर्थ है।

फूले अनारन पाँडर डारन, देखत देव महाडरु माँचैं,
माधुरी मौरन अंब के बौरन भौरन के गन मंत्र-से बाँचैं;
लागि उठे बिरहागिनि की कचनारन बीच अचानक आँचैं,
साँचे हूँ काम पुकारि पिका कहूँ नाचै बनै ना बसंत की पाँचैं ॥७४॥

फूलि उठो बृंदाबन, भूलि उठे खग, मृग
सूलि उठे उर बिरहागि बगराई है;
गुंजरैं करत अलि पुंज कुंज-कुंज धुनि,
मंजु पिक-पुंज नूत मंजरी सुहाई है।
बाल बनमाल फूल-माल बिकसंत बिह-
संत मुखी ब्रज मैं बसंत-ऋतु आई है;
नंद के नंदन ब्रजचंद को बदन देखे
सदन-सदन देव मदन-दुहाई है ॥७५॥

पिक = पपीहा।

१. सिसिर निसि भीतरे भवन बास रहै औ' बासर बसंत उपबन बास रहै। प्रयोजन यह कि शिशिर की निशि में भवन की मुख्यता है, और बसंत के दिन में उपवन की।

भूलि उठे खग = पक्षीगण भूल गए हैं, अर्थात् इतना आहार-विहार का आधिक्य हुआ कि उनको दिशा-भ्रम भी होने लगा। मृग सूलि उठे उर आदि = हिरनों के हृदय में विरहाग्नि दहकने लगी, क्योंकि पतझड़ हो जाने के कारण उनकी एकत्र स्थिति नहीं रही।

सीतल, मंद, सुगंध खुलावति पौन डुलावति को न लची है१,
नौल गुलाबनि कौल फुलावनि जोन-कुलावनि प्रेम पची है२;
मालती, मल्लि, मलैज, लवंगनि, सेवती संग समूह सची है,
देव सुहागनि आजु के भागनि देखुरी,बागनि फाग मची है।।६६।।

प्रकृति में फाग का रूपक बँधा है।

नौल = नवल = नवीन। कौल = (कौंल) = कमल। जोन-कुलावनि (जोन्ह+कुल+अवनि) = चाँदनी के समूह से युक्त पृथ्वी; यहाँ चाँदनी के फैलने तथा गुलाचाँदनी-जाति के पुष्पों के फूलने से प्रयोजन है। सेवती = जंगली गुलाब। सची = संचित।

माधुरी झौरनि फूलनि भौंरनि बौरनि-बौरनि बेलि बची है३,
केसरि किंसु कुसुंभ कुरौ किरवार कनैरनि रंग रची है;
फूले अनारनि चंपक-डारनि लै कचनारनि नेह तची४ है,
कोकिल रागनि नूत परागनि देखुरी, बागनि फाग मची है।।७०।।

प्राकृतिक शोभा में फाग का चित्र।

झौरनि = गुच्छों में। बौरनि (१) बौराए हुए, (२) मंजरियों में। किंसु = किंशुक = टेसू का फूल। कुरौ (कुरैया) = एक वृक्ष, जो जंगलों में होता है, तथा जिसकी पत्तियाँ लंबी और लहरदार होती हैं। इसमें लंबे और सुगंधित फूल लगते हैं, जो सफ़ेद, लाल, पीले और काले या नीले रंग के होते हैं। इन फूलों के गुण वैद्यक-शास्त्र में पृथक्-पृथक् माने गए हैं। किरवार = अमलतास।

१. यह समारोह किसने रुक (ठहर) कर न देखा?
२. पृथ्वी प्यार से दब गई है।
३. इतने फूल फूले हैं कि पत्तियाँ तो शेष नहीं हैं, केवल बेलि बची (शेष रह गई) है।
४. गरम हुई, तीव्रता पकड़ी।

लोग-लुगाइन हौरी लगाई मिलामिली चारु न मेटत ही बन्यौ,
देवजू चंदन-चूर कपूर लिलारन लै लै लपेटत ही बन्यौ;
ये इहि औसर आए इहाँ समुहाइ हियो न समेटत ही बन्यौ,
कीनी अनाकनि औ मुख मोरि पै जोरि भुजा भटू भेंटत ही बन्यौ॥७८॥

गुप्ता नायिका है। चारु = चार, चाल, रस्म; समुहाइ = सामने आने पर। अनाकनि = आनाकानी; हिचक।

आँगी कसैं, उकसैं कुच ऊँचे, हँसैं-हुलसैं फुँफुँदीन की फूँदैं,
चंदन आड़ करै पिय जोट, पै अंचल ओट दृगंचल मूँदैं;
देवजू कुंकुम केसरि की मुख-बारिज बीच बिराजती बूँदैं,
बाढ़यो बिनोद गुलाल लै गोदनि मोद-भरी चहुँ कोदनि कूँदैं॥७९॥

हुलसैं = आनंदित होती हैं। फुँफुँदीन की फूँदैं हुलसैं = अँगिया या नीवी की गाँठें खुलने को चाहती हैं। आड़ = तिलक, आड़। जोट = सहचर नायिका के। कुंकुम = गोला। मुख-बारिज = मुखारबिंद। कोदनि = ओर, पक्ष।

कछु और उपाय करै जनि री इतने दुख क्यों सुख सों भरिबी१,
फिरि अंतक सो बिन कंत बसंत के आवत जीवत ही जरिबी२;
बन बौरत बौरी ह्वै जाउँगी देव सुनै धुनि कोकिल की डरिबी,
जब डोलिहैं औरैं अबीर भरी सुहह्! कहि बार कहा करिबी३॥८०॥

१. हे सखी! कुछ और उपाय कर न (अर्थात् अवश्य कर), क्योंकि इतने दुःख किस प्रकार सुख से पूरे होंगे?

२. एक बसंत विरह में बीत चुका है, किंतु उसके यमराज-समान फिरकर (दूसरी बार) आते ही जीते-जी जल जाऊँगी।

३. जब और सखियाँ अबीर से भरकर डोलेंगी (अर्थात होलिकोत्सव आवेगा), तब क्या करूँगी, सो हे सखी, कह।

भरिबो = पूरा करूँगी, व्यतीत करूँगी। अंतक = यम। औरैं = दूसरी (सखियाँ)। बीर = हे सखी !

(१८)

रास

फूँकि-फूँकि मंत्र मुरली के मुख जंत्र कीन्हो
　　प्रेम परतंत्र लोक लीक ने डुलाई है;
तजे पति मात तात गात न सँभारैं कुल-
　　बधू अधरात बन भूमिन भुलाई है।
नाच्यो जो फनिंद इंद्रजालिक गोपाल, गुन
　　गारुड़ी[1] सिँगार रूपकला अकुलाई है;
लीलि-लीलि लाज दृग मीलि-मीलि काढ़ी कान्ह,
　　कीलि-कीलि व्यालिनी-सी ग्वालिनी बुलाई है ॥८१॥

कवि कृष्ण को इंद्रजाली बनाकर ग्वालिनी-गोपियों का आकर्षित हो आना वर्णन करता है।

कीलि-कीलि = मंत्र से विवश कर-करके।

घोर तरु नीजन बिपिन तरुनीजन ह्वै
　　निकसीं निसंक निसि आतुर अतंक मैं;
गनैं न कलंक मृदु लंकनि मयंक-मुखी
　　पंकज-पगन धाईं भागि निसि पंक मैं।
भूषननि भूलि पैन्है उलटे दुकूल देव,
　　खुले भुजमूल प्रतिकूल बिधि बंक मैं;

१. सर्प का पकड़नेवाला या उसका विष उतारनेवाला। ऐसे मंत्र में गरुड़ की हाँक दी जाती है, इसी से उस मंत्र-विद्या का नाम गारुड़ि है।

चूल्हे चढ़े छाँड़े उफनात दूध-भाँड़े, उन
पूत छाँड़े अंक, पति छाँड़े परजंक मैं ॥ ८२ ॥

आतुर = जल्दी में, अधीर। अतंक (आतंक) = प्रताप, रोब। संकनि = कठिनाली।

निर्जन बन में होती हुई, चरण-कमलों से कीचड़ मँझाती हुई रात में होकर गई। प्रतिकूल बिधि बंक मैं = टेढ़ी एवं उलटी रीति से।

इस छंद में बिलास तथा विभ्रम हावों की अच्छी बहार है। विभ्रम में उलटे भूषणादि का विषय होता है, और विलास हाव में गमनादि में विशेषता का।

गोकुल नरिंद्र इंद्रजाल सा जुटाय ब्रज-
बालनि लुटाय कै छुटाय लाज-दामु सों;
बिज्जुलि-से बास अंग उज्जल अकास करि
बिबिध बिलास रस हास अभिरामु सों१।
जान्यो नहीं जात, पहिँचान्यो न बिलात, रास-
मंडल ते स्याम, भासमंडल ते घामु सों;

१. सुंदर रस और हँसी के साथ अनेक प्रकार के खेल करके बिजली के समान कपड़े और उजले आकाश-सा शरीर करके। प्रयोजन यह है कि भगवान् सवस्त्र गायब हो गए। वसन बिजली-से बिला गए, तथा शरीर उजला आकाश-सा हो गया, अर्थात् सब कहीं है, और पकड़ा न जा सकने से कहीं भी नहीं। भगवान् ने अनेक रूप रखकर रास रचा था। वे सब रूप आकाशवत् हो गए, अर्थात् सब कहीं होकर भी कहीं न रहे। उजले आकाश कहने का यह अभिप्राय है कि उसमें घनादि की ओट भी न थी। इसी प्रकार भगवान् खुले में गायब हो गए।

बाहनि१ के जोट काम कचन के कोट गयो
ओट ह्वै दमोदर दुरोदर को दामु सो ॥ ८३ ॥

जुटाय = इकट्ठी करके। दामु = रस्सी (बाज का बंधन)। भासमंडल ते घामु सो = जैसे सूर्य की धूप देखते-देखते लुप्त हो जाती है, वही दशा भगवान् की हुई। दुरोदर को दामु = कपोर शंख द्वारा वादा किया हुआ धन।

कालिंदी के कूलनि तरुनि तरु-मूलनि
निहारि२ हारि अंग के दुकूलनि उघेरतीं;
मल्ली३ मलै४ मालती नेवारी जाती५ जूही देव,
अंबकुल, बकुल६ कदंबन मैं हेरतीं।
ताल दै-दै तालनि तमालनि७ मिलत फिरैं,
बोलि-बोलि बाल भुज भेंटि-भट भेरतीं;
पुलकि-पुलकि पुलिननि८ मैं पुलोमजा९-सी
बिलपि बिलोकि कान्ह-कान्ह करि टेरतीं ॥ ८४ ॥

भट भेरतीं = धक्का खाती फिरती हैं।

रास के अंतर्गत वियोग का बहुत अच्छा वर्णन है।

---

१. बाहुओं के जोड़ों से (आबद्ध होते हुए भी) तथा कामनाओं-रूपी सोने के क़िले में (बंद होकर भी) दामोदर (श्रीकृष्ण) ग़ायब हो गए।

२. भगवान् को जो वृक्ष पसंद थे, उनकी जड़ों को देखकर।

३. मल्लिका, बेला।

४. मलयज, चंदन।

५. चमेली।

६. मौलसिरी।

७. कृष्ण खदिर (काले खैर का दरख़्त)।

८. किनारों।

९. शची (पुलोमा से उत्पन्न)।

(१३)

कुछ राग-रागिनी

कोयल अलापी कुल नाचत कलापी, ताल
बोलत बिसाल बोल चातक सुनायो है ;
दामिनीन बीच उपबीत गुन पीतपट,
मोतिन को हार बग-पाँति मनभायो है।
फूले मुख लोयन कमल कमलाकर,
मुकुट रबि जोति ताप बरषि सिरायो है१ ;
मोहै धुनि सरगमैं२ बरषा पहर चौथे,
मेघ तनस्याम घनस्याम बनि आयो है ।।८४।।

मेघ-राग का घनस्याम (श्रीकृष्ण) से रूपक बाँधा गया है। राग का ही वर्णन मुख्य है। उपबीत गुन = यज्ञोपवीत (जनेऊ) के डोरे। बग-पाँति = बगलों की पंक्ति। कमलाकर = सरोवर। सिरायो है = शांत किया है।

छंद में अलापना, नाचना, ताल देना आदि भगवान् से संबद्ध है, तथा कोकिल, मयूर, पपीहा आदि मेघ से।

अंब के बौरन बौरैं बिराजतीं, मौरसिरी सो धरी सिरमौरी३,
इंदु-से सुंदर गोल कपोलन, बोल सुनाय करी पिक बौरी ;

१. फूले लोचन कमल हैं, मुख सरोवर, मुकुट सूर्य, ज्योति ताप और बरसना सिराना (चित्तों को सियराना, ठंडा करना) हैं।

२. ध नी र ग म = धैवत, निषाद, रिषभ, गांधार, मध्यम ये सब स्वर मेघ राग में आते हैं। स से सहित का प्रयोजन लेना चाहिए। यह राग खाडव-जाति का है। धुनि सरगम से भगवान् तथा राग, दोनो श्रोता को मोहित करते हैं।

३. मौलसिरी ही सिर पर मुकुट है।

सेत दुकूलनि साँमरी बाम की पैनो चितौनी चुभै चित दौरी ,
पूरन पुन्य सुराग मैं प्योधनो१ गाइए सीत निसागम गौरी॥८६॥

बौरैं = बौड़े । पिक बौरी = कोयल को पागल करना अर्थात् उसका बहुत बोलना । साँमरी (श्यामा) = यौवनमध्या ।

गौरी रागिनी का वर्णन है । छंद में उसके सामान, रूप, गाने के समय आदि का कथन है ।

साँवरी सुंदरि पीत दुकूल सु फूले रसाल की मूल लसंती ,
लीन्हे रसाल की मंजरी हाथ सुरंगित आंगी हिए हुलसंती ;
पूरन प्रेम सुरंग मैं प्योधनो२ संग-ही-संग बिलोल हसंती ,
हैउत हैउत ह्वां दिन माँझ समौ करि राख्यो बसंत बसंती॥८७॥

बसंती रागिनी का वर्णन है ।

लसंती = शोभा देनेवाली । हुलसंती = प्रसन्नता से भरी हुई । बिलोल = बहुत हिल-डुलकर । हैउत (हैवत) = हेमंत-ऋतु ।

(१४)

उपमा-रूपकादि

पीक-भरी पलकैं झलकैं, अलकैं जु गड़ीं सु लसैं भुज खोज की३ ,
छाय रही छबि छैल की छाती मैं छाप बनी कहुँ ओछे उरोज की ;

१. ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद स्वरों से गौरी गाई जाती है । गौरी मालकौस की रागिनी (भार्या) है । उपर्युक्त स्वरों का कथन "राग मैं प्यौ धनी" सूत्र से निकलता है ।

२. स, रि, ग, म, प, ध, नी । संपूर्ण जाति ।

३. नायक की पलकों में किसी अन्य नायिका के चुंबन से पीक लगी हुई है, जो झलक रही है, अथच नायक के भुज में उसकी अलकें गड़ी हुई हैं, जो खोज के योग्य हैं, अर्थात् द्रष्टव्य हैं ।

ताहि चितै बड़री अँखियान ते तीकी चितौनि चली अति ओज की,
बालम ओर बिलोकि कै बाल दई मनो चोट सनाल सरोज की[1]।

खंडिता नायिका का वर्णन है। अलकैं = बालों की लटें। ती की = स्त्री की। सनाल = डंठल-सहित। कुच-छाप बनने से गाढ़ालिंगन तथा कुचों की कठोरता के भाव प्रकट होते हैं।

गोरी गरबीली उठी ऊँघत उघारे अंग,
देव पट नील कटि लपटो कपट-सी;
भानु की किरन उदैसानु कंदरा ते छूटी,
सोम-छबि करी तम-तोम पै दपट-सी।
सोने की सराँग स्याम पेटी ते लपेटी कटि,
पन्ना तें निकसि पुखराज की झपट-सी[2];
नील घन धूम पै तड़ित-दुति घूमि-घूमि
धूँधरि सों धाई दाव पावक लपट-सी॥ ८६॥

नायिका की सूर्योदय (प्रकाश) से उपमा दी गई है। उदैसानु = उदयाचल का शिखर। तोम = समूह। सराँग = शलाका (रेखा खींचने की एक सीधी लकड़ी)। तड़ित = बिजली। धूँधरि = अँधेरा। दाव = दौरहा।

---

१. पति की ओर नायिका ने देखकर ही मानो कमल-नाल-समेत कमल उसके मारा, अर्थात् उसका धिक्कार किया। नेत्र कमल हैं, तथा निगाह ने जो दूरी पार की है, वही मानो कमल-नाल-सी रेखा बन गई है। नवीन उत्प्रेक्षा है।

२. पन्ना हरा होता है, और पुखराज पीला। इसी कारण श्याम पेटी से पीत शरीर की छवि की ऐसी उपमा कही गई है।

नील पट को कपट इस कारण से कहा है कि कपट का रंग भी काला होता है। प्रयोजन यह है कि नील वस्त्र श्वेत शरीर को ढके हुए है, सो मानो द्रष्टाओं से कपट करता है। कुछ अंग खुला है, और कुछ नील वस्त्र से आच्छादित है; इसी से कहा गया है कि मानो उदयाचल से सूर्य की किरण निकली है अथवा चंद्रमा की श्वेत शोभा ने तम-समूह को डपट (डाँट) दिया है।

परिहास कियो हरि देव सुबाम को वा मुख बैन नच्यो नट ज्यों,
करि तीखी कटाच्छ कृपान भयो मन पूरन रोष भर्‌यो भट ज्यों;
लपिटाय गही पट-पाटी करौंट लै मान-महोदधि को तट ज्यों,
कटु बोल सुने पटुता मुख की पट दै पलटी उलट्यो पट ज्यों॥ ६०॥

मुग्धा मानिनी नायिका का वर्णन है। परिहास = हँसी, ठट्ठा। कृपान = खड्ग। पट (खट्वा) = खाट।

नायक के परिहास करने से नायिका के मुख में वचन नट के समान नाचने लगे, अर्थात् बहुत प्रकार के उपालंभ-पूर्ण वाक्य उसने कहे। यह मुग्धात्व का सूचक भाव है। उसके कटाक्ष तलवार-से टेढ़े हो गए, और मन पूर्ण क्रुद्ध योद्धा की भाँति रोष-पूर्ण हुआ। उसने करवट लेकर मान-रूपी भारी समुद्र के कूल की भाँति पलंग (खाट) की पट्टी लिपटकर पकड़ ली, किंतु नायक के मुख-चातुर्य-प्रदर्शक (हँसी-भरे) कटु बैन सुनकर (मान-मोचन हो जाने से) नायिका (मुग्धात्व के कारण) पट की आड़ देकर उलटे कपड़े की भाँति शीघ्र पलट गई, अर्थात् नायक की ओर हो गई। मुख की पटुता से नायक ने जो कटु बोल कहे थे, वे विनय-गर्भित थे, जिनसे मान-मोचन हुआ। यहाँ यह संदेह उठ सकता है कि जब गुरु मान था, तब केवल विनय से उसका मोचन कैसे हो गया? उत्तर यह है कि यहाँ मध्यम मान का कथन है, गुरु मान का नहीं। नायिका मान-महोदधि के

तट तक गई थी, किंतु महोदधि में उसने पैर नहीं रक्खा था, अर्थात् उसका मध्यम मान गुरु मान के निकट तक गया था, किंतु गुरु मान हुआ न था। उलटा पट लोग शीघ्रता से पलट देते हैं। इस छंद में नच्यो नट ज्यों और पलटी उलट्या पट ज्यों में धर्म गुप्त है। उत्प्रेक्षाएँ बहुत श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे अर्थ को ख़ूब समर्थ करती हैं।

राधिका-सी सुर-सिद्ध-सुता नर-नाग-सुता कवि देव न भू पर,
चंद करौं मुख देखि निछावरि केहरि कोटि लटी कटि हू पर;
काम-कमान हू को भृकुटीन पै, मीन मृगीन हू को दृग दू पर,
वारौं री कंचन-कंज-कली पिकबैनी के ओछे उरोजन ऊपर ॥६१॥

प्रतीप-अलंकार है। लटी = छोटी; पतली।

देव न देखति हौं दुति दूसरी, देखे हैं जा दिन ते ब्रज-भूप मैं,
पूरि रही री वही धुनि कानन, आनन आन न ओप अनूप मैं;
ए अँखियाँ सखियाँ न हमारियै जाय मिलीं जलबुंद ज्यौं कूप मैं,
कोटि उपाय न पाइए फेरि, समाय गईं रगराय के रूप मैं ॥६२॥

प्रेम का वर्णन है। न हमारियै=केवल हमारी नहीं हैं, वरन् दूसरे की भी हैं, क्योंकि उसी से मिल गईं।

दूध सुधा मधु सिंधु गँभीर ते, हार जुपै नग-भीर लै आवै १,

१. दुग्ध, अमृत तथा मधु (मद्य या शहद) के समुद्रों का नग-भीर (पर्वत-पुंज) द्वारा मंथन करके यदि कोई पुरुष उनके सार पदार्थ ले आवे। जब साधारण समुद्र के मंथन से चौदह रत्न निकले, तब उपर्युक्त समुद्रों से अवश्य ही उत्तम पदार्थ निकलेंगे, यह अभिप्राय है। दूध से सफ़ेदी आई, अमृत से मीठापन और मधु (मद्य) से अरुणिमा। दाँतों के लिये सफ़ेदी है, और ओठों के लिये मिठाई तथा लालिमा।

बाल प्रबाल पला मिलिकै मनि-मानिक मोतिन जोति जगावै१ ;
लै रजनीपति बीच बिरामनि, दामिनि-दीप समीप दिखावै ,
जो निज न्यारी उज्यारी करै तब प्यारी के दंतन की दुति पावै२ ।

नायिका के दाँतों की कांति का वर्णन है । संभावना-अलंकार है ।

रूप के मंदिर तो मुख मैं मनि-दीपक-से दृग हैं अनुकूले३ ,
दर्पन मैं मनि, मीन सलील, सुधाधर नील सरोज-से फूले४ ;

१. नवीन मूँगों के पल्ले में मणि-माणिक्य तथा मोती मिलकर जो ज्योति निकलती है, उसे यदि कोई जाग्रत् करे, अर्थात् प्रकट करे । ओष्ठों की लाली के लिये मूँगों तथा माणिक्य का विचार आया है, और दंतों के लिये मणि तथा मोतियों का कथन हुआ है ।

२. चंद्रमा (मुख) के बीच विराम-चिह्नों (ओठों) को लेकर उन्हीं के निकट ऐसी बिजली की दीप्ति दिखलावे, जिससे केवल उजियालापन पृथक् किया गया हो (अर्थात् चकाचौंध करनेवाली चमक उसमें न हो), तो नायिका के दंतों की शोभा का सादृश्य मिल सकता है । ओठों का रूप विराम-चिह्नों के समान है, और मुख की कांति चंद्रमा के समान है ।

३. तेरा मुख सौंदर्य का घर है, जिसमें नेत्र मणि के दीपक-से प्रसन्न हैं ।

४. वे नेत्र आईना में मणि के समान दीप्तिमान् हैं, जल में मछली के समान चंचल तथा चंद्रमा में नीले कमल-से फूले हैं । यहाँ शीशा, जल और चंद्रमा मुख के स्थान पर हैं, तथा मणि, मीन और नील कमल नेत्र के लिये आए हैं ।

देवजू सूरमुखी मृदु कूल के भीतर भौंर मनौ भ्रम भूले,
अंक मयंकज के दल पंकज, पंकज में मनो पंकज फूले १ ॥६४॥

नायिका के रूप (नेत्रों) का वर्णन है। सूरमुखी = सूरजमुखी नाम का फूल। मयंकज = चंद्र-पुत्र; बुध। पंकज = कमल; एक जगह मुख से तथा दूसरी जगह आँखों से अभिप्राय है।

घूँघट खुलत अबै ऊलटु ह्वै जैहै देव,
उद्धत मनोज जग युद्ध जूटि परैगो;
ऐसी न सुरोक सिख को कहै अलोक बात,
लोक तिहूँ लोक की लुनाई लूटि परैगो २।
दैयन दुराव मुख नतरु तरैयन को
मंडलहु मटकि चटाकि टूटि परैगो ३;
तो चितै सकोचि सोचि मोचि मृदु मूरछि कै,
छोर ते छपाकरु छता-सो छूटि परैगो ४ ॥६५॥

---

१. मानो मयंकज (बुध) के अंक (गोदी) में कमल-दल-से हैं (मुख के लिये बुध का कथन है, तथा नेत्रों के लिये कमल-दल का), तथा पंकज (मुख) में पंकज (नेत्र) फूले हैं।

२. ऐसी शिखा (दीप्ति) देवलोक में भी नहीं (अलौकिक दीप्ति) है, लोकोत्तर बात कौन कह सकता है? सारा संसार (देखते ही) तीनो लोकों की सुंदरता लूटने लग जायगा।

३. टेढ़ा होकर चटाका टूट पड़ेगा। जो वस्तु टूटने को होती है, वह पहले टेढ़ी होकर तब टूटती है।

४. तेरी ओर देखकर चंद्रमा संकुचित होकर, सोच करके, मोचि (लचककर) कुछ मूर्च्छित होकर अपनी सीमा से छाता की भाँति छूट पड़ेगा।

नायिका के मुख की प्रशंसा है। प्रतीपालंकार की मुख्यता है। उद्भत मनोज = काम से उन्मत्त। सुरोक (सुर + ओक) = देव-लोक। दैयन = दैव के लिए। छोर ते = सीमा से (आकाश से)। छता = छाता।

खंजन मीन मृगीन की छीनी दृगंचल चंचलता निमिरवा की,
देव मयंक के अंक की पंक निसंक लै कज्जल-लीक लिखा की;
कान्ह बसी अँखियान बिषे बिसफूरति बीस बिसे बिसिखा की,
दीपति मैन-महीप लिखाई समीप सिखा गहि दीप-सिखा की ॥६६॥

आँखों ने निमिष, खंजन (खरैंचा), मछली तथा मृगियों के नेत्रों की चंचलता छीन ली। देव कवि कहता है, चंद्रमा के अंक (गोदी) का कीचड़ (कालिमा) बेख़ौफ़ लेकर आँखों में काजल की रेखा लिखते रहे। बेडर इसलिये कहा गया है कि पंक लगने से भी कुरूप होने का भय न हुआ। 'लिखा की' बार-बार कर्म करने का सूचक वाक्यांश है। उधर कज्जल भी नित्य ही लगाया जाता है। हे कान्ह! आँखों के विषे (आखों में) बीसो बिस्वे बाणों की तीव्रता बस गई है, तथा दीप-शिखा की शिखा निकट रखकर नेत्रों में राजा कामदेव की दीप्ति (ज्योति) लिखाई गई है।

कोयन ज्योति चहूँ चपला सुर-चाप सुभ्रू रुचि कज्जल काढ़ो,
बूँद बड़े बरसैं अँसुवा हिरदै न बसै निरदै पति जाढ़ो;
देव समीर नहीं धुनिए धुनिए सुनिए कलकंठ निनादो १,
तारे खुले न घिरी बरुनी घन नैन भए दोउ सावन-भादौ ॥६७॥

१. कवि कहता है कि वर्षा का पवन संसार को नहीं धुनता (कँपाता या ध्वनि पूर्ण करता), वरन् सोहावने कंठ का शब्द सुन पड़ता है।

नायिका के नैनों के लिये वर्षा-ऋतु का रूपक बाँधा गया है। कोयन = आँखों के किनारे (कोया शब्द से बना है)। सुभ्रू = सुंदर भौंहें (सुभ्रू)। कादौ = कीचड़ (काँदो)। हिरदै न बसै = हृदय (पर) नहीं लगा हुआ है, अर्थात् वियोग की दशा है। जादौ = यादव। तारे = नक्षत्र तथा आँखों की पुतली।

कंज-सों आनन खंजन-सों दृग याम न रंजन भूलैं न वोऊ १,
तामरसौ नलिनौ सरसौ अलि होइ नहीं तब सो चित सोऊ २;
पूरन इंदु मनोज सरो चित ते बिसरो उसरो उ न दोऊ ३,

१ इस मन में कमल-से मुख का तथा खंजन-से नेत्रों का क्या रंजन (शोभा-वृद्धि) होता है ? क्या वे दोनों (कमल तथा खंजन) मुख तथा नेत्रों के आगे भूल नहीं जाते ?

२. हे अलि (भ्रमर), यदि तुम तामरस (कमल) तथा नलिनी (कुमुदिनी) दोनो से सरसौ (रस मानो, प्रसन्न होओ), तो तुम्हारा वह चित्त भी वही न होगा (अर्थात् जो चित्त केवल कमल से प्रसन्न था, वह कमल और कुमुदिनी दोनो से प्रसन्न होने से वही-का-वही नहीं रहेगा, प्रत्युत उसकी गुणग्राहकता में क्षति पड़ जायगी)। प्रयोजन यह है कि यदि नायक का चित्त आनन तथा नेत्र के बराबर कंज तथा खंजन को माने, तो उसका चित्त वैसा अनवधानता-पूर्ण माना जायगा, जैसा उस भ्रमर का, जो कमल और कुमुदिनी से समान प्रीति करे।

३. पूर्ण चंद्र सरो (समाप्त हुआ, बीत गया) (और मुख की बराबरी न पाकर) चित्त से बिसरो तथा मनोज (कामदेव) (उसकी बराबरी न कर सकने से) उसरो (चित्त से हट गया) उ (वे) दोनो (उपमेय के योग्य) नहीं हैं।

देवजू ओप किधौं अपमान अरे उपमान करौ कवि कोऊ १ ।।६८।।

ऐपन की ओप इंदु कुंदन की आभा चंपा
केतकी को गाभा पीत जोतिन सों जटियत ;
जगर-मगर होत सहज जवाहिर-से,
अति ही उज्यारे जब नेसुक उबटियत ।
वैसे ही सुभग सुकुमार अंग सुंदरी के
लालन तिहारे या सनेह खरे लटियत ;
देव तेब गोरी के बिलात गात बात लगें,
ज्यों-ज्यों सीरे पानी पीरे पान से पलटियत २ ।।६६।।

ऐपन = चावल और हल्दी बाँटकर जो अवलेपन बनाया जाता है । गाभा = अंतर्भाग । नेसुक = थोड़ा । उबटियत = उबटन लगाते हैं । लटियत = कृश होती है (लटा = दुर्बल) । तेब = ते अब । बिलात गात = शरीर लुप्त-सा होता जाता..., अर्थात् नायिका कृश होती जाती है ।

१. इन उपमानों से वर्ण्य का ओप है कि अपमान (दीप्ति देने के स्थान पर ये उपमान उपमा न माने जाने से उसका निरादर करेंगे, क्योंकि हीनोपमा का मामला हो जायगा) । इससे कोई कवि ठीक उपमान का खोज करे, अथवा कोई कवि उपमा न दे ।

२. पीले पान अगर ठंडे पानी में पलटे जायँ, तो वे सड़ जाते हैं, और यदि गरम पानी में पलटे जायँ, तो ठीक रहते हैं । छंद में विरह का वर्णन है । प्रयोजन यह दिखलाया गया है कि जैसे पीले पान ठंडे पानी से सुधरने के स्थान पर बिगड़ते हैं, वैसे ही विरह के कारण नायिका उद्दीपन के उपचारों से शोभा प्राप्त करने के स्थान पर कृश होती जाती है । उपमा बहुत अच्छी है ।

छाई छबि छहरि लुनाई की लहरि लह-
रान्यो रस - मूल ह्वै रसाल सुर-रूख-सो१ ;
पीवत ह्यां जात दिन-राति तिन तोरि-तोरि ,
खिन-खिन सखिन की आँखिन पिऊख-सोर ॥१०१॥

नायिका की शोभा का कथन है।

धार मैं धाइ धसीं निरधार ह्वै, जाय फँसीं उकसीं न अबेरी,
री अँगराइ गिरीं गहिरी गहि फेरे फिरीं न घिरीं नहिं घेरी;
देव कछू अपनो बसु ना रसु लालच लाल चितै भईं चेरी,
बेगिही बूड़ि गईं पँखियाँ अँखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी ॥१०२॥

नायक के रूप से मोहित हुई नायिका का वर्णन है। धार = यहाँ मधु-प्रवाह (प्रेम-प्रवाह) से मतलब है। निरधार = निराधार = बिना सहारे के।

समाभेद रूपक है।

बरुनी बघंबर, औ गूदरी पलक दोऊ,
कोये लाल बसन भगोहै भेष रखियां ;
बूड़ी जल ही मैं दिन-यामिनिहूँ जागी, भौंहैं
धूम सिर छायो बिरहागिनि बिलखियाँ।
आँसू जो फटिक माल लाल डोरे सेल्ही पन्हि
भईं हैं अकेली तजी सेली संग सखियाँ ;

१. रस का मूल (मुख्यांश) कल्पवृक्ष-सा रसाल (रस का घर, रस-पूर्ण) होकर लहराया (हवा के झोंकों से डालें हिलीं)।

२. नायक सखियों की आँखों से (अवयव-दर्शन द्वारा) चख-चख तिन तोड़-तोड़कर (कुदृष्टि बराना) अमृत-सा पान करता जाता है।

दीजिए दरस देव, लीजिए सँयोगिनि कै,
योगिनि ह्वै बैठीं यै बियोगिनि की अँखियाँ ॥१०३॥

कवि ने नायिका के विरह का रूपक योगियों की दशा से बाँधा है। गूदरी = पुराने वस्त्रों में चारो ओर से सीवन डालकर जो वस्त्र ओढ़ने लायक बनाया जाता है। कथरी। कोये = आँखों के कोने। सेली = वह माला, जो योगी लोग धारण करते हैं।

कुल की-सी करनी कुलीन की-सी कोमलता,
सील की-सी संपति सुसील कुल-कामिनी;
दान को-सो आदरु उदारताई सूर की-सी,
गुनी की लुनाई गुनमंती गजगामिनी।
ग्रीषम को सलिल, सिसिर को-सो घाम देव,
हेँउँत हसंती जलदागम की दामिनी;
पून्यो को-सो चंद्रमा, प्रभात को-सो सूरज,
सरद को-सा बासरु, बसंत की-सी जामिनी ॥१०४॥

इस छंद में उपमाओं की अच्छी बहार है।

(१५)

शाब्दिक सामंजस्य

काननि कोननि कूदि फिरैं करि सौतिन के उर खेत की खूँदनि,
देवजू दौरि मिले ठगि ज्यों मृग जे न फँदे फँदवार[1] के फूँदनि[2];

1. बहेलिया, फंदा लगानेवाला।

2. फंदों से। जो मृग बहेलिए के फंदों में नहीं फँसे थे, वे भी ठगे-से दौड़कर झट से मिल गए। प्रयोजन यह कि लटों की सुंदरता से अरसज्ञ भी मोहित हो गए।

घूँघट के घटकी नटिकी१ सुछुटी लटकी लट की गुन गूँदनि ,
केहू कहूँ न छुरै२ बिछुरै३ बिचरै न चुरै४ निचुरै जलबूँदनि ॥१०५॥

लट का वर्णन है ।

खूँदनि = कुचलना । घटकी = बीच में रहनेवाली । लटकी = लटकती हुई । गूँदनि = गुत्थी, गुड्डी, गाँठ ।

दूलहै सोहाग दिन तूल है तिहारे, तिन
तू लहै, तिहारे सो अयान ही की भूल है ;
भूल है न भाग को, प्रवाह सों दुकूल है,
दुकूल है उज्यारो, देव प्यारो अनुकूल है ।
कूल है नदी को, प्रतिकूल है गुमान री ,
अहू लहै सु तौन जौन जोबन अहूल है ;
हूल है हिये में, पलहू लहै न चैन री ,
तिहारु पल दूलहै, [illegible] पल दूलहै ॥ १०६

तिहारे दूलह को (तेरा) सोहाग दिन के तुल्य (समुज्ज्वल) है, तिनको तू लह (प्राप्त कर), तेरे में अनजानपने ही की भूल है, भाग्य की भूल नहीं । प्रवाह से ही दुकूल (दो किनारेवाली नदी होती) है (अर्थात् जब प्रेम प्रस्तुत है, तब किन्हीं बातों की शंका

१. नहीं रुकी ।
२. न छूटती है ।
३. न हटती है ।
४. नहीं छिपती है ।

करके उसका अभाव मानना अनुचित है), तेरा प्रिय पति अनुकूल (केवल तुझमें अनुरक्त) है, (जिससे) तेरे दोनो कुल उजियाले हैं। गर्व अनुचित है, जो अछूल यौवन (अनिंद्य बढ़ती जवानी) नदी को कूल है, सो अहू (अब भी) लहै (प्राप्त कर)। (प्रयोजन यह है कि अनिंदित यौवन नदी का किनारा है, अर्थात् स्थिर नहीं रहता है। उसे प्राप्त कर, अर्थात् उससे आनंद ले।) तेरे (दूलह के) हृदय में (तेरी रुखाई से) हूल (दर्द) है, उसे एक पल भी चैन नहीं मिलती, एक पल-भर दूलह को देख, दो पल-भर विहार प्राप्त कर। उत्तमा सखी की मानवती नायिका को शिक्षा है।

आई बरसाने ते, बुलाई बृषभानु-सुता,
निरखि प्रभान प्रभा भानु की अथै गई ;
चक-चकवान को चुकाए चक-चोटन सों,
चकित चकोर चकचौंधी-सों चकै गई।
नंदजू के नंदजू के नैनन अनंदमयी,
नंदजू के मंदिरन चंदमयी छ्वै गई ;
कंजन कलिनमयी, कुञ्जन अलिनमयी
गोकुल की गलिन नलिनमयी कै गई ॥ १०७ ॥

बरसाने=राधिका की जन्मभूमि का गाँव। अथै गई=अस्त हो गई। चक-चकवान=चक्रवाकी और चक्रवाक (चकई और चकवा)। चुकाए=भुला दिए। चक-चोटन=नैन-सैन (चक=चक्षु)। चकै गई=छका गई, चकित कर गई। नंदजू के नंदजू=(नंद-पुत्र) कृष्णजी। छ्वै गई=पूरित हो गई, छा गई। नलिनमयी कै गई=कमलमयी रास्ता बना गई। यथा तुलसीदासजी ने कहा

है—"जहँ बिलोकि मृग-शावक-नैनी, जनु तहँ बरसि कमल-सित-श्रेनी।"

यह भी कहा जा सकता है कि रास्तों में कमलमुखी सखियाँ भर गईं, जिससे मानो रास्ते ही कमलमय हो गए।

अंत रुकै नहिं अंतरु कै मिलि अंतरु कै सु निरंतरु धारै१,
ऊपर वाहि न ऊपर वा हित ऊपर बाहर की गति चारै२;
वातन हारति बात न हारति हारति जीभ न बातन हारै३,
देव रँगी सुरत्यो सुरत्यौ मनु देवर की सुरत्यौ न बिसारै४॥१०८॥

परकीया नायिका है। उपपति से प्रेमाधिक्य का वर्णन है।

१. (उपपति से) अंतर करके वह अलग नहीं रुकती है, और मिलकर जब अंतर करती है (जैसा कि उपपति से प्रेम करने में स्वाभाविक है, क्योंकि उपपति से मिलन थोड़ी देर ही को मौक़ा निकालकर होता है), तब (स्मरण में) उसे निरंतर धारण करती है।

२. ऊपर (दिखलाने में) वाहि (उपपति को) नहीं (चाहती), वरन् ऊपर वा (पति) से हित है, और युक्ति-पूर्वक ऊपर बाहरवाली गति में ही चलती है (दिखलाने को पति से ही प्रेम करती है)।

३. उस (उपपति की) ओर हारती है (मन विवश होकर भी उसकी ओर जाता है), किंतु बातों में उससे नहीं हारती है। (बातों में प्रेम प्रकट नहीं करती है, अर्थात् विवश होकर कर्मों से तो उससे प्रेम प्रकट करना ही पड़ता है, किंतु बातों में नहीं करती है।) बातें करते-करते जिह्वा थक जाती है, किंतु बातें नहीं चुकतीं।

४. देव कहता है कि वह देवर की सूरत और सुरति दोनों में रंजित है, तथा उसका स्मरण भी मन से नहीं भुलाती।

अंबकुल बकुल[1] कदंब मल्ली मालती
मलैजन[2] को मींजिकै गुलाबन की गली ह्वै ;
को गनै अलप तरु[3] जी सों, जो कलपतरु
तासों बिकलप क्यों अलप मतिअली ह्वै।
चित जाके चाय चढ़ि चंपक चपायो कोन,
मोचि सुख सोच ह्वै सकुचि चुप चली ह्वै[4] ;
कंचन बिचारे रुचि पंचन मैं पाई देव
चंपाबरनी के गरे पर्‌यो चंपकली ह्वै[5] ॥१०९॥

बिकलप = विकल्प = विह्वल, उद्विग्न, व्याकुल, संशय-युक्त। सखी का कथन है कि हे भ्रमर ! तू अलपमति होकर ऐसी पारि-

---

१. मौलसिरी, केसर।

२. मलयज, चंदन।

३. छोटा दरख़्त या ख़राब दरख़्त। उन छोटे पुष्प वृक्षों को कौन गिन सकता है, जिनसे तू (अलि) अनुकूल है।

४. जिसके चित्त ने उत्साह धारण कर चंपे का फूल कोने में चपा दिया (कांति-हीन कर दिया, अर्थात् उसके रंग के आगे चंपे का रंग फीका पड़ गया), किंतु जो चंपे को कांति-हीन करने के कारण शोक एवं संकोच-पूर्ण होकर, सुख छोड़ चुपके-से चल दी। प्रयोजन यह है कि अपनी कांति से चंपे को द्युति-हीन करने से उसे गर्व अथवा प्रसन्नता न हुई, वरन् उलटे खेद हुआ। नायिका को चंपे की पराजय से दुःख हुआ है।

५. उस चंपकवर्णवाली नायिका के गले में चंपकली के रूप में पड़ने से सोने की चाह [illegible]चों में हुई।

जात (रूपी सुंदरी) से क्यों विमुख होता है, जब तूने उससे हीनतर अंबकुल, बकुल आदि को पसंद किया ही है ?

(१६)

संक्षिप्त गुण

कीच के बीच रटैं चुरियाँ कुल-सी उमड़ी तुलसी वन लूनो,
देव सिढ़ी जमुना सिढ़िये चढ़ि दीन्हो मनोरथ को हम चूनो;
बीच खगै खग कंटक ह्वै सुतो कंटक ई नहिं आवत ऊनो,
पापनचाव चितै चित की गति देहहु के दुख मैं सुख दूनो ॥११०॥

इस छंद के विषय में देवजी ने स्वयं यह दोहा लिखा है—

सकल लच्छना-भेद बर और व्यंजना-भेद ,
तातपर्य प्रगटत तहाँ दुख के सुख सुख खेद ।

इस छंद को देव ने लक्षणा-व्यंजनावाले सकल भेदों के संकर उदाहरण में दिया है । इसका शब्दार्थ लेने से अर्थ न बनेगा, क्योंकि स्व" कवि ने इसे आध्यात्मिक अर्थ में लिखा है ।

संसार मानो कीच है (क्योंकि उसमें बुराई बहुत है), जिसमें दुर्वासनाएँ (चूड़ी से दुर्वासनाएँ व्यंजित की गई हैं) प्रबला (रहती) हैं, तथा कुल के समान उमड़ी हुई तुलसी (सुवासनाओं) का गहन बन कटा पड़ा है । देव कवि कहता है कि यमुना जो स्वर्ग की सीढ़ी है, उस पर (घाट की) सीढ़ियों से चढ़कर मैंने मनोरथों को चूना दे दिया (चुनौती दी, ललकार दिया) । इतना करने पर भी बीच में खग (जीवात्मा) कंटक होकर लगता (चुभता) है, और वह कंटक ही कम किया नहीं होता (सांसारिक बखेड़े छोड़े नहीं छूटते) । जब चित्त की गति पर ध्यान देता हूँ, तब उसमें पापों का चोप पाता हूँ, किंतु जब तापादि दैहिक कष्टों पर विचार करता हूँ, तब अंत

में उस दुःख में दूना सुख देख पड़ता है, क्योंकि उनसे मुक्ति प्राप्त होती है, जो वास्तविक सुख है। खग के उपर्युक्त अर्थ में जीवात्मा शुद्ध निर्विकार आत्मा के लिये कंटक माना गया है। यह भी कहा जा सकता है कि बीच में खग के साथ खग कंटक है, अर्थात् परमात्मा के साथ जीवात्मा कंटक-रूपी है। यथा "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति" (मुंडकोपनिषत्)। दो पक्षी संयोगी मित्र एक वृक्ष पर स्थित हैं। उनमें एक पीपल को स्वाद से खाता है, न खाता हुआ दूसरा प्रकाशमान् है। यहाँ खानेवाला पक्षी जीवात्मा है, और न खानेवाला परमात्मा। इसी भाव को कवि ने तीसरे चरण में कुछ-कुछ व्यंजित किया है। इस छंद में लक्षणा और व्यंजना के सब उदाहरण निकलते हैं। यह देव की रचना में संक्षिप्त गुण का अच्छा उदाहरण है।

'तुलसी बन लूनो' में उपादान लक्षणा है, क्योंकि वन आप-से-आप नहीं कटा है, वरन् उसे किसी ने काटा है। 'रटैं चुरियाँ' में लक्षण लक्षणा है, क्योंकि चुरियाँ नहीं रटतीं, वरन् उनके हिलने से शब्द सुन पड़ता है। 'यमुना सिढ़ियै चढ़ि' में शुद्ध सारोपा लक्षणा है, क्योंकि समता के कारण यमुनाजी सीढ़ी कही गई हैं। कीच को संसार कहना शुद्ध साध्यवसान लक्षणा है, क्योंकि समता के कारण संसार का नाम न लिया जाकर वह कीच ही कहा गया है। 'खग कंटक ह्वै खगै' में गुण देखकर खग कंटक कहा गया है, सो गौणी सारोपा लक्षणा है। गुणों के कारण दुर्वासना को चूड़ी और सुवासना को तुलसी कहना गौणी साध्यवसान के उदाहरण हैं। मनोरथ को चूनो (चुनौती) देना रूढ़ि लक्षणा का उदाहरण है, और ऊपर जो अन्य छ भेद दिखलाए गए हैं, वे प्रयोजनवती के हैं। देव ने गौणी लक्षणा को मीलित कहा है।

कीच के बीच चुरियों के रटने से संसार में दुर्वासनाओं का बल जो दिखलाया गया है, वह अगूढ़ व्यंजना का उदाहरण है। 'देह हू के दुख में सुख दूनो' यह वाक्य गूढ़ व्यंजना का उदाहरण है। पूरे छंद में आध्यात्मिक भावों का प्रकटीकरण व्यंग्य द्वारा हुआ है। तात्पर्य यह कि सांसारिक सुख में वास्तविक दुःख तथा सांसारिक दुःख में वास्तविक सुख है।

अन्य मूल-मंत्र

"समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ;
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्यमहिमानमिति वीतशोकः।
यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ,
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति।"
(मुंडकोपनिषद्)

निरंजन=निर्विकार।

पीतम बेष बिलास बिसेख सबिभ्रम मोहनि जोहनि जोऊ,
रूप के भार धरे लघु भूषन औ' बिपरीति हँसै किन कोऊ ;
मै रसरास हँसी रिस हूँ रस देवजू दूख सुखौ सम होऊ,
तोहि भटू बनि आवत है रस भाव सुभाव में हाव दसोऊ॥११९॥

इस छंद में दसों हावों के उदाहरण दिए गए हैं। संक्षिप्त गुण की यहाँ प्रधानता है।

"होहिं सँयोग सिंगार में दंपति के तन आय—
चेष्टा जे बहु भाँति की ते कहिए दस हाय।"

(१) लीला-हाव पति के भूषण, वसनादि पत्नी द्वारा धारण करने से होता है। इस छंद में भी नायिका द्वारा पति का वेश धारण करने में लीला-हाव आया। (२) विलास-हाव गमनादि

में कुछ विशेषता से होता है। विशेष विलास में विलास-हाव मिला। (३) लघुभूषण से विच्छित्ति-हाव हुआ। (४) विपरीत भूषण से विभ्रम-हाव आया। (५) 'भै रसरास हँसी रिस हू रस' में कई भाव मिलने से किलकिंचित-हाव प्राप्त हुआ। (६) सुख को दुख के समान मानने में कुट्टमित-हाव प्रकट है। (७) भौंहों द्वारा देखने में भविष्य में भी दरस-कामना प्रबला होने के कारण मोट्टायत-हाव हुआ। (८) रिस से पति का अनादर व्यंजित है, जिससे विब्बोक-हाव आया। (९) रूप का भार नायिका पर है, अर्थात् रूप ही उसका पूर्ण आभरण है, जिससे आभरण-बाहुल्य का विचार आने से ललित-हाव निकला। (१०) 'भै रसरास' में रास के रस में भय लगा रहने के कारण उसमें अपूर्णता का अभिप्राय व्यंजित हुआ, जिससे विहित-हाव आया।

छंद का अर्थ सुगम है। तृतीय चरण में भय इस कारण है कि कोई विहार-क्रीड़ा देख न ले। रस, रास और हँसी विलास-क्रीड़ा में स्वाभाविक हैं। रिस मान के कारण हुई, और उसके पीछे मान-मोचन से फिर से रस हो गया। नायिका विलास-क्रीड़ा में इतनी प्रसन्न है कि उसके लिये तत्संबंधी दुःख और सुख प्रायः सम हो रहे हैं। दुःख का आभास प्रकट में 'नाहीं' आदि कहने से होता है, और सुख प्रकट विलास-कामना से।

चतुर्थ चरण में 'भट्ट' शब्द 'वधू' का अन्य रूप है, और स्त्री के लिये एक आदर-सूचक संबोधन है।

बैरागिनि कीधौं अनुरागिनि सोहागिनि तू,
देव बड़भागिनि लजाति औ' लरति क्यों;

सोवति जगति अरसाति हरखाति अन-
खाति बिलखाति दुख मानति डरति क्यों।
चौंकति चकति उचकति औ' बकति बिथ-
कति औ' थकति ध्यान धीरज धरति क्यों;
मोहति मुरति सतराति इतराति साह-
चरज सराहि आइचरज मरति क्यों ॥ ११२ ॥

हरखाति=हर्षित होती है। अनखाति=क्रोध करती है। यह 'अनखाना'-शब्द से बना है। सतराति=अप्रसन्न होती है।

इस कवित्त में तैंतीस 'चारी भावों के उदाहरण सूक्ष्म रूप से दिए गए हैं। इसकी टीका स्वयं देवजी ने 'शब्द-रसायन' में यों लिखी है—

वैरागिनि निर्वेद उग्रता कै अनुरागिनि;
गर्व सोहागिनि जानि मत्त मदते बड़भागिनि।
लज्जा लजति अमर्ष लरति सोवति सु नींद कहि;
बोध जगति आलस्य अलस हरषति सु हर्ष गहि।
अनखाब असूया ग्लानि श्रम बिलख दुखित दुख दीनता;
संका डराति चौंकति त्रसति चकित अपस्मृत छीनता ॥ १ ॥

उचकि चपल आवेग व्याधि सों बिथकि सु ब्रीड़ति;
जड़ता थकित सु ध्यान चित्त सुमिरन धरि धीरति।
मोह मोहि अवहित्थ मुरति सतराति उग्रगति;
इतरैबो उन्माद साहचर्यै सराह मति।
अरु आइचर्य बहुतर्क करि मरन संभ्र मूरछि परति;
कहि देव देव तैंतीस हू संचारिन तिय संचरति ॥ २ ॥

बिमल ह्वै मलिन ससंक बंक सलज
सिथिल दीन सालस सचिंत सँभरति है;
मद उनमाद धीर चपल अमर्ख हर्ख,
नींद जाग्र स्वपन बितर्क बिसुरति है।
ब्याधि गर्व उग्र उतकंठा दुख आवेग,
अचल बच खोट सबै जानति डरति है;
मोहति मुरति आँसू स्वेद थंभ पुलक,
बिबर्न स्वरभंग कंपि मूरछि परति है॥ ११३॥

सालस = आलस्य-सहित। अमर्ख (अमरख; अमर्ष) = क्रोध। बितर्क = विचार। बच खोट = बुरे वचन। बिबर्न = रूपांतर।

इस छंद में विविध भावों का फल शरीर पर कथित होकर संचारी भावों की मुख्यता है। वियोग श्रृंगार का कथन है।

नीचे को निहारत नगीचे नैन अधर
दुबीचे दुहूँ स्यामा अरुनाभा अटकन को;
नील मनि भाग ह्वै पदुमराग ह्वै कै,
पुखराग ह्वै रहत बिध्यो छ्वै निकट कन को।
देवजू हँसत दुति दंतन मुकुत जोति,
बिमल मुकत हीरा लाल गटकन को१;
थिरकि-थिरकि थिर थाने पर तान तोरि,
बाने बदलत नट मोती लटकन को॥ ११४॥

कन = सोने का कण। बाने = वेश (भेष)।

लटकन के मोती का वर्णन है। इस छंद में मीलित अलंकार

---

१. दंत द्युति से लटकन का मोती हीरा को लजाता है, तथा अधर की अरुणाभा से लाल को गटकता (श्रीहीन करता) है।

की बहार है। अरुनाभा (अरुण + आभा) = लाल छटा; लटकन में यह लाल रंग अधरों से प्राप्त है। स्यामा = काला रंग; यह रंग आँखों की पुतलियों से आया है। पदुमराग = माणिक या लाल-भामक रत्न। पुखराग (पुष्पराग) = एक प्रकार का रत्न, जो प्रायः पीला होता है। लटकन के मोती में यह पीलापन स्वर्ण-कण से प्राप्त है।

बानर बीर बसाए १ अटा रँग२ मंदिर मैं सुक सारयों चिरैया,
भोर लौं ऊखिल भीर अथायन ३ द्वार न कोऊ किवार भिरैया;
धौंसौं घिरे घर मैं रहौ देव ४ बज्रा बिछुरे कहौ कौन चिरैया ५,
फूले न बाग ६ समूले न मूरें ७ ऊ सूले खरे घर फूले फिरैया ८।

इस छंद में संक्षिप्त गुण का कवि ने अच्छा समावेश किया है।

(१७)

रूप तथा नख-शिख

माथे मनोहर मौर लसै. पहिरे हिय मैं गहिरे गुँजहारनि,
कुंडल मंडित गोल कपोल, सुधा-सम बोल बिलोल निहारनि;

---

१. भूत गुप्ता।
२. लक्षिता।
३. मुदिता अथवा स्वयंदूती।
४. कुलटा।
५. भविष्य गुप्ता।
६. प्रथम अनुसैना।
७. वचनविदग्धा।
८. दूसरी अनुसैना।

सोहति त्यों कटि पीत पटी, मन मोहनि मंद महा पग धारनि,
सुंदर नंदकुमार के ऊपर वारिए कोरिकु मार-कुमारनि ॥ ११७ ॥

श्रीकृष्ण के कुमार-स्वरूप का वर्णन है। बिलोल = चंचल। मार-कुमारनि = कामदेव के लड़कों को।

आओ ओट रावटी झरोखा झाँकि देखौ देव,
देखिबे को दाउँ फेरि दूजे दौस नाहिनै;
लहलहे अंग रंगमहल के अंगन में
ठाढ़ी वह बाल लाल पग न उपाहिनै[1]।
लोने मुख लचनि, नचनि नैन-कोरनि की
उरति न और ठौर सुरति सराहिनै[2];
बाम कर बार हार अंचल सम्हारै, करै
कैयो छंद कंदुक उछारै कर दाहिनै ॥ ११८ ॥

दूती नायक को नायिका का दर्शन कराती है। नायिका के उत्तम चित्र का वर्णन है।

रावटी = तंबू, क़नात। दाउँ = मौक़ा (दाँव)। छंद = खेल।

---

१. पैर में जूता नहीं है। (उपाहन = जूता)।

२. सुरति की सराहना दूसरे ठौर नहीं उरती (औरती, ध्यान में आती)।

पूरन प्रेम सुधा बसुधा बसुधारमई बसुधार सु रेखी १,
जीवन या ब्रज जीवन की ब्रज जीवन जीवनमूरि बिसेखी २;
तू परमावधि रूप रमा परमानँद को परमानद पेखी ३,
नेह भरी नख ते सिख देव सुदेह धरे मनि-मूरति देखी ॥ १२६ ॥

रेखी = रेखा खींची हुई, गिनी हुई, गण्य। बसुधा = पृथ्वी। जीवन = पानी (जीवनं भुवनं जलमित्यमरः)।

सरद के बारिद में इंदु सो लसत देव,
सुंदर बदन चाँदनी सो चारु चीर है;
सोधी सुधा-बिंदु मकरंद-सी मुकुत-माल
लपिटी मनोज ४ तरु-मंजरी समीर है।
सील-भरी सलज सलोनी मृदु मुसुकानि
राजै राजहंसगति गुनीन गंभीर है;

---

१. बसु (ज्योति की) धारा-युक्त रत्नों की धारा सुंदर प्रकार से गण्य हुई। प्रयोजन यह है कि नायिका ज्योति पूर्ण रत्न-समूह-सी है। वह प्रेम-पूर्ण होकर पृथ्वी की मानो अमृत है।

२. तू ब्रज के जीवधारियों की जीव है, अथच ब्रज की जल-रूपी जीवनमूरि (जीवन की उत्पत्ति का हेतु) विशेष रूप से है।

३. तू लक्ष्मी के सौंदर्य की अतःपर सीमा है; अथच परमानंद को भी प्रमाण देने(हद बाँधने)वाली तुझे हमने देखा।

४. चित्त प्रसन्न करनेवाली।

घेरी चहुँ ओरन ते भौंरन की भीर, तामैं
ये री चितचोरनि चकोरनि की भीर है१ ॥ १२० ॥

सोधी = शुद्ध की हुई। गहीर = गंभीर।

कातिक२ की राति पूनो इंदु परकास दूनो
आस पास३ पावस-अमावस लगी रहै;
ग्रीपम४ की उपमा मयूख मान कसे, मुख५
देखे मनमुख निसि सिसिर लगी रहै।
बरसै६ जोन्हाई सुधा बसुधा सहस धार
कुमुदिनि सूखै ज्यौं-ज्यौं जामिनि जगी रहै;
दोऊ७ पर उज्जल बिराजै हंस हंसी देव
स्याम रँग रँगी जगमगि उमगी रहै ॥ १२१ ॥

१. मयोजन यह कि सौरभ के लोभ से भौंरे तथा चंद्रमा के भ्रम से चकोर नायिका को घेर रहे हैं।

२. शरद् ऋतु।

३. मुखमंडल के इधर-उधर बालों के समूह से मेघाच्छादित वर्षा-ऋतु का मतलब है। मयूख = किरण।

४. नायिका के मान करने से ग्रीष्म-ऋतु का अभिप्राय है।

५. नायिका के मुदित मुख-चंद्र से शिशिर का अभिप्राय है।

६. हेमंत-ऋतु; इस ऋतु में ज्यों-ज्यों रात्रि बढ़ती है, त्यों-त्यों कुमुदिनी सूखती है।

७. वसंत-ऋतु; इस ऋतु में दोनो पक्षों में आनंद रहता है। हंसी रूपी नायिका के दोनो पर श्याम (हंस, नायक) के रंग में रँगे होने पर भी उज्ज्वल हैं।

रूप में षड् ऋतु ।

खगी रहै = गड़ी रहै । उषमा = गरमी । मान करे = मान-युक्त होने से । कुमुदिनि = (कुमुद), गदूल, कोकाबेली ; पद्मिनी (नायिका) । जामिनि जगी रहै = रात्रि जगती है, अर्थात् बढ़ती है । पर = पक्ष । उमगी रहै = उल्लसित बनी रहै ।

नायिका के स्वरूप एवं भावों की ऋतुओं से समानता की गई है।

आई हुती अन्हवावन नायनि सोंधो लिए कर सूधे सुभायनि,
कंचुकी छोरी उतै उबटैबे को ईंगुर-से अँग की सुखदायनि ;
देव सरूप की रासि निहारति पायँ ते सीस लौं सीस ते पायनि,
ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी-सी, हँसै कर ठोढ़ी धरे ठकुरायनि ॥१२२॥

सोंधो = सुगंधित द्रव्य (शोधन शब्द से निकला है, जिसका अर्थ स्वच्छ करना है) । उबटैबे को = उबटन करने को ।

घाँघरा घनेरा लाँबी लटैं लटे लाँक पर,
काँकरेजी सारी खुली अधखुली टाड़ वह ;
गोरी गज-गौनी दिन दूनी दुति होनी देव,
लागति सलोनी गुरु लोगन के लाड़ वह ।
चंचल चितौनि चित चुभी चितचोरवारी,
मोरवारी बेसरि औ केसरि की आड़ वह ;
हँसि-हँसि बोलन की गोरे-गोरे गोलन की
कोमल कपोलन की जी में गड़ी गाड़ वह ॥१२३॥

लटे = क्षीण, पतले । लाँक = कटि (लंक) । टाड़ = टड़िया ; भुजाओं पर पहनने का भूषण । मोरवारी बेसरि = मोर (आभूषण) युक्त नथ । मोर एक गहना है, जो मयूर की आकृति का सोने में मोती पिरोकर बनता है ।

घेरदार घाँघरा है, तथा क्षीण कटि तक लंबी लटैं लटकी हुई हैं। काँकरेजी (पतले कपड़े तथा काले रंग की) सारी से टँड़िया कुछ खुली तथा कुछ अधखुली हैं।

जगमगी जोतिन जड़ाऊ मनि-मोतिन की
चंद-मुख-मंडल पै मंडित किनारी-सी ;
बेंदी वर बीरन गहीर नग हीरन की
देव झमकनि में झमक भीर भारी-सी[1]।
अंग-अंग उमड़्यो परत रूप रंग नव-
जोबन अनूप न उज्यास न उज्यारी-सी[2];
डगर-डगर बगरावति अगर अंग,
जगरमगर आपु आवति दिवारी-सी[3]॥ १२४॥

गहीर = गंभीर, भारी। नग = रत्न। झमकनि = प्रकाश। उज्यास = प्रकाश-समूह। अगर = आगे।

गोरे मुख गोल हरे हँसत कपोल बड़े,
लोयन बिसाल बोल लोने लीन लाज पर ;
लोभा लागे लाल लखिबे को लखि देव छवि
गाभा-से उठत रूप सोभा के समाज पर।

---

1 बेंदी, अच्छे पानों, तथा भारी हीरा के नगों के प्रकाशों में ज्योति की बड़ी भीड़-सी लगी है।

२. नए यौवन का ऐसा उजियाला है, मानो चाँदनी रही न गई।

३. रास्ते-रास्ते में अंग की जगमगाहट आगे ही फैलाती हुई स्वयं वह दीवाली-सी (चमकती हुई) चली आती है।

बादले की सारी दरदावन किनारी जग-
मगी जरतारी भीने झालरि के साज पर ;
मोती गुहे कोरन चमक चहुँ ओरन ज्यों
तोरन तरैयन की तानी द्विजराज पर ॥ १२५ ॥

हरे = धीरे-धीरे । बिलोल = चंचल । गोभा (कोंभा) = कल्ला । बादले (बादला) = एक प्रकार का कपड़ा, जो तार व रेशम से बनता है । दरदावन (दरदामन) सब ओर । तोरन (तोरण) = बंदनवार ।

सोधि सुधारि सुधाधरि देव रची नख ते सिख शुद्ध सुधा-सी,
सोने-से रंग, सलोने-से अंगन कीने न नैन कसौटी कसी-सी ;
ही के बुझैं सबही के सताप सु सौतिन[१] को असराप असीसी,
भावतीहौहितहौकि हितू भई आवती हौ अँखियानि बसी-सी।

असराप = विना शाप । सराप = श्राप = शाप । असीसी = आशीर्वाद दिया ।

लागत समीर लंक लहकै समूल अंग,
फूल-से दुकूलन सुगंध बिथुरो परै ;
इंदु-सो बदन मंद हाँसी सुधा-बिंदु
अरविंदु ज्यों मुदित मकरंदन मुरो परै ।
ललित लिलार श्रम झलक अलक भार,
मग में धरत पग जावक घुरो परै ;
देव मनि-नूपुर-पदुम पद दूपर ह्वै,
भू पर अनूप रूप रंग निचुरो परै ॥ १२७ ॥

१. सौतों को आशीर्वाद देती है ।

लंक = कटि। श्रम झलक = परिश्रम की झलक अर्थात् स्वेद-बिंदु। पदुम-पद दू पर = दोनो चरणारविंदों पर।

अंबर नील मिली कवरी मुकुता-लर दामिनि-सी दसहूँ दिसि;
ता मधि माथेमें हीरा गुह्यो सुगयोगढ़ि केसनकी छबि सों लिसि;
माँग के मूल बनो सिरफूल दुव्या झमकै कनकावलि सों घिसि,
शृंगसुमेरु मिले रबि-चंद ज्यों पावस-मास अमावस की निसि।

कवरी = लट। लिसि = मिल करके। शृंगसुमेरु = सुमेरु-पर्वत की चोटी पर। अंबर नील = नीला कपड़ा, जो बेनी में लगा हुआ है। आकाश का प्रयोजन नहीं है, क्योंकि मुक्ता-लर की दामिनि से जो उपमा है, वह इस कारण से केवल एकदेशीय मानी जायगी कि आगे के पदों में केश-पाश का आकाश से रूपक चला नहीं है।

काम-गिरि-कुंड ते उठति धूम-सिखा कै
चटक-चरनाली सारदा में पीत पंक की१;
तनक-तनक अंक-पाँति ज्यों कनक-पत्र,
बाँचत ससंक लंकर लीनी रीति रंक की।
सूछम उदर में उदार निरे नाभी कूप
निकसति ताते ततो पातक अतंक की;
रंचक चितौत चित-बंचक चढ़ावै दोप, रोम-
रेखा चौथि-सोम-रेखा ज्यों कलंक की॥ १२६॥

१. काम-गिरि-कुंड = (कामगिरि है) त्रिवली, जिसके बीच कुंड है, नाभि। यह रोमावली काम-गिरि-कुंड से उठती हुई धूम-शिखा है, या पीत-पंक-युक्त सरस्वती-नदी में चटक-पक्षी की चरणावली (चरण-चिह्न की पंक्ति)।

२. कमर यह डरती है कि कहीं चटक-पक्षी मुझ पर पैर न रख दे, जिससे लंक के टूटने का डर है।

नायिका की रोमावली का वर्णन है। चटक = एक पक्षी, जिसको गौरैया कहते हैं। चरनाली = चरणों की पंक्ति। सारदा = सरस्वती। लंक = कटि। लंक लीनी रीति रंक की = कटि-प्रदेश रंक की दशा को प्राप्त हुआ; अर्थात् (कटि) क्षीण हो गई। उदार = इस वास्ते उदार है कि पापों को बाहर निकाले देता है। निरै = नरक। ततो पातक अतंक = वही पातकों के प्रताप का विस्तार। यहाँ कवि ने रोमराजी की श्याम रंग के कारण पाप से समता दी है। रंचक = थोड़ा। चित-वंचक = चित्त को ठगनेवाली। बिरवृत्ति उसे देखने से काम-वश होकर बिगड़ती, सो मानो वह सदोष हो जाती है।

उज्जल कपोल अरुनाधर मधुर बोल,
लोल चकचौंध सो अमंद मंद हास को;
चीकने चिबुक चारु नासिका मुकुत भारु,
ललित लिलार बेंदी बंदन बिलास को१।
कंचन किनारी झुमकारी मै करन-फूल,
सीस-फूल हीरा लाल मोतिन उजास को;
देव ज्यों उदित इंदु-मंडल अखंड मुख-
मंडल के आस-पास मंडल प्रकास को॥ १३०॥

नायिका के मुख-मंडल का वर्णन। अरुनाधर = लाल ओठ। लोल = चंचल। उज्यास = प्रकाश। मै = (मय); सहित। झुमकारी मै करन-फूल = झुमकारी (गुच्छा)-सहित कान में पहनने का गहना।

१. बिंदी और इंगुर उसमें विलास करते हैं, अर्थात् खेल-सा करके प्रभा फैलाते हैं।

आँड़ी चितौनि कहूँ उड़ि लागती बंदन आड़े जो आड़ न होती१,
हारतो गूँदि गुमान गयंदु जो गोल कपोलनि गाड़ न होतीर ;
लूटतीं लोकु लटैं सफुलेल हमेल हिए भुज टाड़ न होती३,
चंदु अचानक च्वै परता मुख-चंदु पै जो चित चाड़ न होती४।

आंड़ी = टेढ़ी। गाड़ = गड़नि, नम्रता। लटैं सफुलेल = फुलेल-सहित वेणी (केश-कलाप)। हमेल = हृदय पर पहनने का एक भूषण। टाड़ = हाथ पर पहनने का एक भूषण, टँड़िया। चाड़ (चाँड़) = भारी चाह।

इँगुर-सा रँग एँड़िन बीच, भरीं अँगुरी अति कोमलतायनि,
चंदन-बिंदु मनौ दमकैं नख देव चुनी चमकैं ज्यों सुभायनि५ ;
बंदत नंदकुमार तिहारेई राधे बधू ब्रज की ठकुरायनि,
नूपुर-संजुत मंजु मनोहर जावक-रंजित कंज-से पायनि ॥ ३ ॥

१. यदि इँगुर की आड़ (बुंदी) आड़े न आती (रक्षक न होती), तो कहीं नायिका के (किसी की) टेढ़ी डीठि (नज़र) उड़कर लग जाती।

२. गुमान-रूपी हाथी गालों के गड्ढे में गिर पड़ने से किसी को मर्दित नहीं कर सकता।

३. यदि टँड़िया से भुज व हमेल से हृदय एक प्रकार बद्ध-से न होते, तो फुलेल लगी हुई लटें सारी दुनिया लूट लेतीं। प्रयोजन यह समझ पड़ता है कि टँड़िया तथा हमेल भी ऐसी अच्छी हैं कि केवल लटें संसार का ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पातीं। भाव यह बैठता है कि लटें, टाड़ और हमेल, सभी बहुत सौंदर्य विवर्द्धक हैं।

४. मुखचंद तो अच्छा है ही, किंतु चित्त की चाड़ उससे भी अच्छी है, जिससे केवल मुख पर ध्यान नहीं जमता।

५. नखों की उपमा चंदन-बिंदु तथा चुनी, दोनो से दी गई है।

केवल राधिकाजी के चरणों का वर्णन एवं उन चरणों की वंदना कृष्णचंद्रजी से कराई जा रही है। चुनी = माणिक्य के छोटे टुकड़े। जावक = महावर। रंजित = रँगे हुए। मंजु = सुंदर।

देव सुवरन गुन बाँध्यो है मधुर महा,
अधर सधर के अखारे मुख ढार मैं१;
थिरकत थान तान तोरत तरयोनन सों,
बोलन कपोलन के विमल बिहार मैं२।
मनोरथ चढ़यो मनमथ के अथक पथ,
नथ को पै न थको निरत निराधार मैं३;
मोती लटकन को नवल नट नाचत,
नयन निरतन हैं चटुल चखसार मैं॥ १२३॥

१. देव कहता है कि लटकन सोने के तार से गूथा है, तथा मुख में ढले हुए महामधुर अधर सधर (नीचे के तथा ऊपर के ओंठ) के अखाड़े में (नाचता) है।

२. नायिका के बोलने में जब विमल कपोल (गाल) विहार करते (हिलते-डोलते) हैं, तब लटकन अपने स्थान पर ताल देकर नाचता तथा कर्णफूलों से तान तोड़ता है, अर्थात् कर्णफूल और लटकन दोनो बोलने में साथ-ही-साथ ऐसे हिलते हैं, मानो एक दूसरे से तान तोड़ते हैं।

३. लटकन मनोरथ (वांछा) है, जो कामदेव के अथक (न थकनेवाले) मार्ग पर चढ़ा हुआ है। वह यद्यपि नथ (बेसरि) का अंग है, तथापि निराधारता पर निश्चय-पूर्वक रत होने से भी नहीं थकता है। प्रयोजन यह है कि (आधार-शून्य) लटका हुआ होने पर भी वह थकता नहीं है। जैसे नट थोड़ा-सा आधार लिए

(१८)

चित्र-सा खिंचा हुआ

प्यारी सकेत सिधारी सखी अँग स्याम के काम सँदेसनि के सुख ,
सूनो इतै रँगभौन चितै चित मौन रही चकि चौंकि चहूँ रुख ;
एकहि बार रही जकि ज्यों कि त्यों भौंहनि तानिकै मानि महादुख ,
देव कछू रद बीरी दै बीरी सुहाथ को हाथ रही मुख की मुख॥१३४॥

विप्रलब्धा नायिका का वर्णन है ।

सकेत (संकेत) = संकेत-स्थान । जकि = ठिठक करके । रद = दाँत ।

पीछे परबीनैं बीनैं संग की सहेली, आगे
भार डर भूषन डगर डारै छोरि-छोरि ;
मोरे मुख मोरनि त्यों चौंकति चकोरनि, त्यों
भौंरनि की भीर भीरु हेरै मुख मोरि-मोरि ।
एक कर आली कर ऊपर ही धरे, हरे-
हरे पग धरै देव चलै चित चोरि-चोरि ;
दूजे हाथ साथ लै सुनावति बचन, राज-
हंसनि चुनावति मुकुत-माल तोरि-तोरि ॥१३५॥

रहने पर भी निराधार नृत्य करनेवाले कहे जाते हैं, वैसे ही लटकन नथ का थोड़ा-सा आधार लिए रहने पर भी देखने में निराधार-सा दिखाई देने से यहाँ पर निराधार ही कहा गया है । निरत-शब्द का अर्थ निश्चयेन रत का है, तथा यह शब्द नृत्य का अपभ्रंश भी कहा जा सकता है ।

लटकन का चटसार (पाठशाला) इस कारण से चटुल (चंचल) कहा गया है कि नथ सदा डुलता ही रहता है ।

इस छंद में कवि ने नायिका का अच्छा चित्र प्रदर्शित किया है। परबीन = प्रवीण, चतुर। बीनैं = बटोरती हैं।

पीत रंग सारी गोरे अंग मिलि गई देव,
श्रीफल-उरोज-आभा आभासै अधिक-सी;
छूटी अलकनि छलकनि जल-बूँदन की,
बिना बेंदी बंदन बदन-सोभा बिकसी।
तजि-तजि कुंज-पुंज ऊपर मधुप-गुंज
गुंजरत मंजु रव बोलै बाल पिक-सी;
नीबी उकसाइ, नेकु नयन हँसाय, हँसि
ससि-मुखी सकुचि सरोवर तैं निकसी ॥१३६॥

नायिका के स्नान का वर्णन है। आभासै = भासित होती है; देख पड़ती है। बंदन = ईंगुर।

(१६)

दर्शन-मिलन

औचक ही चितई भरि लोचन वा रस के वस ह्वै चुकी चेरियै,
मोहक मोहूपै हौं नहीं सूझत बूझत स्याम घने तम घेरियै१;
आनँद के मद के नद मैं मनु बूड़ि गयो हद मैं नहिं हेरियै,
कै उलटो सब लोक लगै किधौं देव करी उलटी मति मेरियै ॥१३७॥

नायिका के प्रेमाधिक्य का वर्णन है।

---

१. हे मोहनेवाले, मैं स्वयं अपने को नहीं दिखाई देती। जान पड़ता है, कृष्ण-रूपी घने अंधकार ने मुझे घेर लिया है।

नायिका नायक पर एक ही दृष्टि से उन्मत्त हो गई है।

पहिले सुनि राख्यौ हो भाख्यौ सखी रस चाख्यो अचानक कानपुटी,
लखि चित्र-चरित्र लख्यो सपने अब तौ खिन आँखिन आँखि जुटी;
उमग्यो मनु देव लग्यो पनु सो गुरु बंधुनि की धन-रासि लुटी,
कुल-कानि की गाठि तें छूट्यो हियो, हियतें कुल-कानि की गाँठि छुटी।

इस छंद में कवि नायक के चारों प्रकारों के दर्शनों का वर्णन करता है। यश-श्रवण, चित्र-दर्शन, स्वप्नावलोकन तथा प्रत्यक्ष दर्शन, ये चार प्रकार के दर्शन कहलाते हैं।

कानपुटी = कानों के रंध्र। पनु = प्रण। कानि = मर्यादा।

सारसी सारस हंसिनी हंस, चकोरी चकोर मिले सुख लूटैं,
देव चितै चकई चकवा बिछुरे निसि के बिस-घूँट-से घूँटैं;
केते कपोत मृगी मृग कौ युग जोरैं न जो युग योग ते फूटैं,
फूली लता रस के बस दौरत भौंर के भारन डार न टूटैं ॥१३९॥

दंपति-मिलन के उदाहरण।

बिस-घूँट-से घूँटैं = विष-के से घूँट निगलते हैं (विष घूँट के निगलने में जो समय लगता है, वह नितांत दुःखद होता है। उसी प्रकार रात कटती है)। युग = जोड़े।

आपुस में रस मैं रहसैं बहसैं बनि राधिका कुंजबिहारी,
स्यामा सराहति स्याम कि पागहि, स्याम सराहत स्यामा किसारी;
एकहि आरसी देखि कहै तिय नीके लगौ पिय प्यौ कहै प्यारी,
देवजू बालम बाल को बाद बिलोकि भई बलि हौं बलिहारी ॥१४०॥

युगल-विलास।

रहसैं = विनोद करते हैं। भई बलि हौं बलिहारी = बलि जाऊँ, मैं निछावर हो गई।

दूलह को देखत हिए में हूल फूल ह्वै
बनावति दुकूल फूल फूलनि बसति है ;
सुनत अनूप रूप नूतन निहारि तनु
अतनु तुला में तनु तोलति सचति है ।
लाज-भय-मूल न उघारि भुज-मूलन
अकेली ह्वै नवेली बाल केली मैं हँसति है ;
पहिरति हेरति उतारति धरति देव
दोऊ कर कंचुकी उकासति-कसति है ॥ १४१ ॥

नायक के दर्शन से नायिका के मन में तन्मयता एवं उद्वेग (चित्त की आकुलता) उत्पन्न होता है। हूल फूल = लोट-पोट। फूल फूलनि बसति है = प्रति फूल को दुकूल में इतने विचार से लगाती है, मानो प्रत्येक फूल में स्वयं बस जाती है। सुनत = सुनती थी। नूतन = नवीन। अतनु = नहीं है तनु जिसके, अर्थात् कामदेव। सचति है = सचेत होती है। लाज-भय-मूल न = लज्जा अथवा भय का मूल उसमें नहीं है, अर्थात् प्रौढ़ा है। मूलन = जड़ों।

आँखिन आँखि लगाए रहै सुनिए धुनि कानन को सुखकारी,
देव रही हिय मैं घरु कै न रुकै निसरै बिसरै न बिसारी ;
फूल में बासु ज्यों मूल सुबासु को है फल फूलि रही फुलवारी,
प्यारी उज्यारी हिए भरि पूरि है दूरि न जीवन-मूरि हमारी॥१४२॥

नायक अपनी नायिका का हृदयस्थ होना प्रकट करता है। निसरै = निकले। जीवन-मूरि = जीवन की जड़ अर्थात् जीवनावलंब।

रीझि-रीझि, रहसि-रहसि १, हँसि-हँसि उठैं,
सॉंसैं भरि, आँसू भरि कहत दई-दई;
चौंकि-चौंकि, चकि-चकि, उचकि-उचकि देव,
जकि-जकि, बकि-बकि परत बई-बई २।
दुहुन को रूप-गुन दोऊ बरनत फिरैं,
घर न थिरात रीति नेह की नई-नई;
मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधामय,
राधा-मन मोहि-मोहि मोहनमई भई ॥१४३॥

राधा और कृष्ण के अन्योन्य प्रेम का वर्णन है। इस छंद में भाव-समुल्लास की मुख्यता है।

(२०)

प्रेम

जाके मद मात्यौ सो उमात्यौ ३ ना कहूँ है कोई,
बूड़्यो उछल्यौ ना तर्‌यौ सोभा-सिंधु सामुहै;
पीवत ही जाहि कोई मर्‌यो, सो अमर भयो,
बौरान्यो जगत जान्यौ मान्यौ सुख-धामु है ४।

१. प्रसन्न होकर।

२. अलग-अलग।

३. निर्मद हुआ।

४. दुनिया ने उसे पागल जाना, किंतु प्रेमी ने वही सुख का घर माना।

चख के चखक भरि चाखत ही जाहि फिरि
चाख्यो ना पियूष कछु ऐसो अभिरामु है १ ;
दंपति सरूप ब्रज औतरयो अनूप सोई
देव कियो देखि प्रेम रस प्रेम नामु है ॥ १४४ ॥

चख = चक्षु। चखक (चषक) = मद्य पीने का पात्र। अभिरामु = आनंददायक।

एकै अभिलाख लाख - लाख भाँति लेखियत,
देखियत २ दूसरो न देव चराचर मैं ;
जासों मनु राचै तासों तनु - मनु राचै, रुचि
भरिकै उघरि जाँचै साँचै करि कर मैं।
पाँचन के आगे आँच लागे ते न लौटि जाय,
साँच देइ प्यारे की सती लौं बैठि सर मैं ३ ;
प्रेम सो कहत कोई ठाकुर न ऐंठौ, सुनि
बैठौ गड़ि गहिरे तौ पैठौ प्रेम-घर मैं ४ ॥१४५॥

१. वह प्रेम कुछ ऐसा रम्य है कि नेत्र के प्याले में भरकर जिसने उसे पिया, उसने फिर अमृत को भी न चक्खा (अर्थात् अमृत की भी परवा न की)।

२. प्रेमी के अतिरिक्त चराचर में कोई दूसरा दिखता ही नहीं।

३. लौ-सर (ज्वाल के तालाब) में प्यारे (शिव) की सती की भाँति बैठकर सत्यता प्रकट करे। जैसे सतीजी ने अग्नि में बैठकर शिव की सत्यता तथा उनमें अपना प्रेम प्रकट किया, वैसे ही अपने पति में शुद्ध स्वकीया प्रेम रक्खे। यह भी अर्थ है कि सती लौं (की भाँति) सर (सरा, चिता) में बैठकर।

४. प्रेम उसे कहते हैं, जिससे कोई स्वामित्व का अहंकार नहीं कर सकता। यदि प्रेम का नाम ही सुनकर गड़कर गहरे में बैठो (पूरी नम्रता रक्खो), तो प्रेम के घर में प्रवेश करो।

सती का उदाहरण देकर कवि शुद्ध प्रेम का वर्णन करता है। बड़ा ही विशद वर्णन है। राचै (रच जाना) = प्रेम-विवश होना। साँचै करि कर मैं = सचाई को हाथ में लेकर (सच्चे कर्म करके)। ठाकुर = स्वामी। गहि = धलकर।

कोकुल[1]या ब्रजगोकुल दो कुल दीप-सिखा-सी ससी-सी रहीं भरि,
त्यों न तिन्हैं हरि हेरत जो रगराती न जो अँगराती गरे परि ;
जो नबला नव इंदु-कला[2]ज्यों लची परै प्रेम रची पिय सों लरि,
भेटत देखि बिसेखि हिए ब्रजभूभुज[3] देव दुहूँ भुज सों भरि।

इस ब्रजगोकुल में कौन कुल दो कुल (भ्रष्ट) है ? (तथापि) सबमें दीप-शिखा एवं शशि के समान सुंदरियाँ भरी पड़ी हैं। जो नायिका केवल विषय-वासना-युक्त है, किंतु रंग (प्रेम) में रत नहीं है, वह चाहे गले भी पड़े, तो भी भगवान् उसे उस प्रकार नहीं हेरते (जैसे प्रेमवती को)। जो नवेंदु-कला-समान यौवन युक्ता नव-वधू प्रेमवती होकर नम्रता प्रेरणा करे, चाहे पति से लड़े भी, उसे ब्रजपति विशेष करके देखकर दोनो भुजाओं से भरकर अंक लगाते हैं।

अँगराती = अंग से रत हैं, अर्थात् केवल अंग भव-विषय-वासना में रत हैं, प्रेम में नहीं। लची परै = झुकी पड़ती हैं, अर्थात् नम्र होती हैं।

जीव सों जीवन, जीवन सों धन, सो धन जीवित नाथ निबाधो,
याचित की गति ईठ की ईठी लौं ईठ की डीठि अनीठ लौं साधो;

१. इस गोकुल में दो कुलवाला (कुल-भ्रष्ट) कौन कुल है ? यह भी अर्थ है कि ब्रज और गोकुल (के) दो कुलों में।

२. दूज का चाँद।

३. राजा (ब्रजराज)।

वा मनमोहन को वह मोहन सोहन सुंदर रूप बिरोधो,
या जिय मैं प्रिय मूरति है पिय मूरति देव सुमूरति कोधो ॥१४७॥

जीव से जीवन मिलता है, और जीवन से धन, किंतु स्वामी के जीवित रखने को वही धन समझा, अर्थात् यदि धन चला जाय, तो हानि नहीं। इस चित्त की गति इष्ट (प्रीति-भाजन) की प्रीति तक है, और उस प्रीति-भाजन की सीधी निगाह अनिष्ट तक खोजा है; अर्थात् प्रीति-भाजन की सीधी निगाह के लिये केवल अनिष्ट सीमा समझा है, शेष कोई सीमा नहीं है। चित्त उस मनमोहन के शोभायमान सुंदर रूप में अटका है। इस मेरे चित्त में प्रियतम की मूर्ति है, और प्रियतम की मूर्ति सुंदर देव मूर्ति (भगवान्) की ओर है; अर्थात् प्रियतम ही भगवान् हैं।

निबोधो = भली भाँति जाना। बिरोधो = अटकी हुई ('रोधन'-शब्द से बना है)। कोधो = तरफ़।

जेठी बड़ी ते अमेठीसि भौंहनि रूक्ष महा मन सूक्ष्म साछैं,
देवजू बातनिही सों हितौति सी सौति सखी सु चितौनि तिरीछैं१;
लाज२की आँचनि या चित राच न नाच नचाई हौं नेह न छीछैं,
चाह भई फिरौं या चित मेरे कि छाहँ भई फिरौं नाह के पीछैं॥

१. सखी मानो सौति के समान होकर टेढ़ी दृष्टि से देखती है, और केवल बातों में हित करती है, वास्तविक नहीं। इस पद का भाव निम्न-लिखित उर्दू-छंद से मिलता है—

यँ कहाँ कि दोस्ती है कि हुए हैं दोस्त नासेह,
कोइ चारासाज़ होता, कोइ ग़मगुसार होता।

२. यह चित्त लाज की आँचों से नहीं रचा (अनुरक्त) है, अथच अक्षुण्ण प्रेम ने मुझे नाच नचाया है।

अमेठी = टेढ़ी । रूछ (रुक्ष) = रूखा । सूछम = सूक्ष्म । सीखैं = शिक्षा देती हैं । छीखैं = क्षीण ।

देखे न परत देव देखिबे की परी बानि,
देखि-देखि दूनी दिख-साध उपजति है ;
सरद उदित इंदु बिंदु-सो लगत, लखे
मुदित मुखारबिंदु इंदिरा लजति है।
अद्भुत ऊख-सी पियूष-सी मधुर बानि
सुनि-सुनि स्रवनन भूख-सी भजति है ;
मंत्री कह्यो मैन परतंत्री कह्यो बैनन को,
बिना तार तंत्री जीभ जंत्री-सी बजति है१ ॥१४६

नायिका का सौंदर्य (तथा नायक का नायिका के प्रति प्रेम) वर्णित है । बानि = स्वभाव । साध = इच्छा । तंत्री = वीणा, सारंगी आदि तारवाले बाजे ।

कठिन कुठाट काठ कुंठित कुठार कूट
रूठि हठ कोठरी कपाट कपटन की२ ।

१. नायिका की छवि देखकर नायक की यह दशा होती है कि उसका मंत्री कामदेव हो जाता है, उसके बैन परतंत्र हो जाते हैं, और उसकी जिह्वा बिना तार की वीणा के समान होकर भी यंत्र की भाँति बजने लगती है, अर्थात् वह नायिका के रूप की अनुरणा प्रशंसा करने लगता है।

२. हठ अब रूठने (नाराज़ होने) रूपी कपट (रूपी) कपाटों की जो कोठरी है, उसमें कठिन कुठाट-रूपी ऐसा काठ लगा है, जिसके गढ़ने में कुठारों (कुल्हाड़ियों) के कूट (पर्वत, समूह) गोठले हो गए हैं । प्रयोजन यह है कि प्रेम-पात्री के साथ हठ एवं रूठना बहुत बुरा है, और उसमें प्रायः कपट का समावेश रहता है ।

चीकनी सुहाग नेह हेम की सरॉंग पर
प्रेम-पाउ परत न राह रपटन की १।
बरतनु बरत उबारिए सुरत - बारि
बारियै न बिरह-बयारि झपटन की २;
देवजू बिदेह ३ दाह देह दहति आनि
आँचल-पटनि ओट आँच लपटन की ४ ॥१५०॥

विरह-निवेदन है।

हेम की सराँग पर=कंचन के खंभ पर। यहाँ खंभ से उस मलखंभ का प्रयोजन है, जो तेल आदि लगाकर चिकना किया जाता है, और जिसके सहारे से नट कला करते हैं। बरतनु बरत उबारिए सुरत-बारि=अच्छे शरीर की दाह को स्मरण-जल से शांत कीजिए।

पीछे तिरीछे कटाच्छन सों इत वै चितवैं यौ लला ललच्यो हैं,
चौगुनो चाउ चवायनि के चित चाह चढ़े हैं चवाउ मचो हैं;

१. सौभाग्य भव प्रेम का जो सोने का मलखंभ है, वह चीकना होने से उस पर रपटने की राह है, सो उस पर प्रेम का पैर नहीं जमता है। प्रयोजन यह है कि प्रेम पर स्थिरता के लिये बड़ी दृढ़ता की आवश्यकता है।

२. (नायिका का) श्रेष्ठ शरीर (विरहाग्नि से) जलता है, उसकी विरह-बयारि के झपटों (की तेज़ी) को क्यों न बचाइए तथा स्मरण-रूपी जल से उसे उबारिए।

३. कामदेव।

४. आँचल-पटों की ओट भी विरहाग्नि की लपटों की आँच लगती है।

जोवन आयो न पाप लग्यो कवि देव रहैं गुरु लोग रिसोहैं,
जी मैं लजैए जुजैए कहूँ, तित पेए कलंक चितैए जु सौहैं ॥१५१॥

मध्या नायिका का प्रेम वर्णित है। चबायनि = चर्चा तथा निंदा करनेवाले। सोहैं = सामने।

पीर सही घर ही में रही कवि देव दियो नहि दूतिन को दुख,
काहू कि बात कही न सुनी, मनु मारि बिसारि दियो सिगरो सुख;
भीर में भूलि कहूँ सखि मैं जब ते ब्रजराज कि ओर कियो रुख,
मोहि भटू तब ते निसि-द्यौस चितौत ही जात चबाइन के मुख॥१५२॥

चबाइन = चर्चा तथा निंदा करनेवालियों।

कंचन के कलसा कुच ऊँचे समीपहि मैन-महीप ठयो है,
बाजी खिलाय कै बालपनो अपनो पन लै सपनो सो भयो है;
देव कहा कहौं ठाकुर ईठ गयो दुरि यो दुरयाग नयो है,
जोवन पैठ में पैठत ही मन-मानिक गाँठि ते ऐंठ लयो है ॥१५३॥

क्या कहूँ कि इष्ट (प्रिय) ठाकुर (स्वामी, नायक) छिप गया। यह एक नया दुर्योग (बुरा ढौंग) हो गया। उस नायक ने नायिका के यौवन की पैठ में पैठते ही माणिक्य-सा मन ऐंठ लिया।

नायिका के वियोग का वर्णन है। ठयो है = ठहरा हुआ है। बाजी = खेल। पन = प्रतिज्ञा। गाँठि ते = पास से। ऐंठि लयो है = छीन लिया है।

देव मैं सीस बसायो सनेह कै भाल मृगम्मद-बिंदु कै भाख्यो,
कंचुकी मैं चुपरयो करि चोवा लगाय लियो उर सों अभिलाख्यो;
लै मखतूल गुहे गहने रस मूरतिवत सिँगार कै चाख्यो,
साँवरे लाल को साँवरो रूप मैं नैननि को कजरा करि राख्यो।

सनेह = प्रेम ; स्निग्ध द्रव्य (तैलादि) से भी मतलब है। मृगम्मद = कस्तूरी । मखतूल = काला रेशम ।

कोऊ कहौ कुलटा, कुलीन-अकुलीन कहौ,
कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौं ;
कसो परलोक, नरलोक बर लोकन में,
लीन्हो मैं अलीक लोक-लीकन तें न्यारी हौं।
तन जाहि, मन जाहि, देव गुरुजन जाहि,
जीव किन जाहि टेक टरति न टारी हौं ;
बृंदावनवारी बनवारी की मुकुटवारी,
पीत पटवारी वहि मूरति पै वारी हौं ॥१५५॥

नायिका के अगाध प्रेम का वर्णन है। अलीक = लोक-मर्यादा से भिन्न । बनवारी = चरणों तक की माला धारण करनेवाला (बन-माली), अर्थात् भगवान् । बनवारी की बृंदावनवाली, पीत पटवाली एवं मुकुटवाली मूर्ति पर नायिका न्योछावर है।

खीझे दुख पाऊँ हौं न रीझे सुख पाऊँ, मेरे
खीझ-रीझ एकै मनु राग्यो सोई रागि चुक्यो ;
जस-अपजस, कुबड़ाई औ' बड़ाई, गुन-
औगुन न जाने जीव जाग्यो सोई जागि चुक्यो।
कौने काज गुरजन बरजैं जु दुरजन,
कैसेऊ न नेम-प्रेम-पाग्यो सोई पागि चुक्यो ;
लोगनि लगायो झुतौ लागो अनलागो देव,
पूरो पन लागो मनु लागो सोई लागि चुक्यो ॥१५६॥

खीझे = क्रोध करने पर। रागि चुक्यो = प्रेम में मग्न हो चुका। जागि चुक्यो = प्रेम का ज्ञान प्राप्त कर चुका। बरजैं = रोकैं। पागि चुक्यो = लिपट चुका। लोगनि लगायो = लोगों ने (कलंक) लगाया।

काहू कि कोई कहावति हौं नहिं जाति न पाँति न जाते खसौंगी,
मेरिये हास करौ किन लोग हौं को१ कवि देवजू काहि हसौंगी;
गोकुलचंद की चेरी चकोरी ह्वै मंद हँसी मृदु फंद फंसौंगी,
मेरी न बात बकौ बलि२कोई हौं बावरी ह्वै, ब्रज-बीच बसौंगी।

खसौंगी = गिरूँगी, पतिता होऊँगी।

साँझ को-सो चंद भोर को-सो करि राख्यौ मुख,
भोर की-सी कांति भाँति साँझ की-सी भई आनि३;
साँझ भोर कोसो नभ देखिए मलीन मन,
साँझ भोर चकवा चकोर की-सी हित-हानि ४।

---

१. मैं हूँ ही कौन, और किसे हँसूँगी?

२. बलि जाऊँ, निछावर होऊँ।

३. जो मुख संध्या के चंद्र-सा मनोहर था, उसे प्रातःकाल के प्रकाश-हीन चंद्र-सा कर रक्खा है, अथच प्रातःकाल की-सी मुख-शोभा साँझ की उतरी हुई शोभा-सी हो गई है।

४. संध्या तथा प्रातः का आकाश प्रकाश की कमी से मलीन समझा गया है। शाम को चक्रवाक की तथा सुबह चकोर की हित-हानि है।

कैसे करि कोसौं कासों कहौं कैसी करौं देव,
कीनी रिपुकेसी कैसे केसी की सुकेसी[1] बानि;
कैसी लाज कैसो काज कैसो धौं सखी समाज,
कैसो घरु कैसौ बरु कैसो डरु कैसी कानि ॥१५८॥

कोसो = कैसा, सदृश। भोर = प्रातःकाल। कोसौं = बुरा चेतौं। रिपुकेसी (केशी-रिपु) = केशी नाम के असुर का शत्रु अर्थात् कृष्ण (नायक)।

साँकरी खोरि बखोरि हमैं किन खोरिलगाय खिसैबो करौ कोइ,
हारेहू हाय नहीं करिहैं हिय घायन लोन घिसैबो करौ कोइ;
देवजू धीर धरो सुधनो किन ओठन दंत पिसैबो करौ कोइ,
रूप हमैं दरसैबो करौ अरसैबो करौ कि रिसैबो करौ कोइ।

बखोरि = छेड़कर। खोरि = गली, दोष।

कैसी कुलबधू, कुल कैसा, कुलबधू कौन,
तू है, यह कौन पूँछे काहू कुलटाहि री;
कहा भयो तोहि कहा काहि तोहि मोहि कीन्हों,
कीधौं और का है और कहा न तौ काहि री।
जाति ही सों जाति, को है जाति कैसे जाति, एरी,
तोसों हौं रिसाति, मेरी मोसों न रिसाहि री;
लाज गहु, लाज गहु, लाज गहिबे ते रही,
पंच हँसिहैं री, हौं तौ पंचन ते बाहिरी ॥ १६० ॥

१. केसी की सुकेसी (की तरह) बानि (टेव) कीनी। प्रयोजन यह है कि श्रीकृष्ण (केशी के शत्रु) ने केशी दैत्य के साथ जैसी शत्रुता की थी, वैसी ही मेरे साथ की है।

नायिका का उत्तर—मैं लाज करने से रही, अर्थात् तेरे विचारों-वाली लाज न करूँगी। प्रयोजन यह है कि सच्ची लाज तो मुझमें पूर्णतया है ही, तेरी समझी हुई थोथी लाज को क्यों पकड़ूँ?

सखी-वचन—अरी! लोग-बाग हँसेंगे।

नायिका का उत्तर—मैं पंचों से बाहर हूँ। प्रयोजन यह है कि साधारण जन-समुदाय शुद्ध प्रेम के उच्च आदर्श से पूर्णतया अनभिज्ञ है। ऐसी मूर्ख-मंडली में रहना किसी उच्च प्रेमी को शोभा नहीं देता।

बोरयो बंस बिरद[1] मैं बौरी भई बरजत,
मेरे बार-बार बीर कोई पास पैठी जनि,
सिगरी सयानी तुम बिगरी अकेली हौं हीं,
गोहन मैं छाँड़ो मोसों मौंहन अमैठी जनि।
कुलटा कलंकिनी हौं कायर कुमति कूर,
काहू के न काम की निकाम याते ऐंठी जनि;
देव तहाँ बैठियत जहाँ बुद्धि बढ़ै, हौं तौ
बैठी हौं बिकल, कोई मोहिं मिलि बैठी जनि ॥१६१॥

बिरहिणी नायिका है। गोहन = रास्तों।

स्याम सरूप घटा ज्यों अनूपम नीलपटा तन राधे के झूमै,
राधे के अंग के रंग रँग्यो पट बीजुरी ज्यों घन सो तन-भूमै[2];

1. बिरद = नेकनामी = कीर्ति।

2. शरीर की भूमि, अर्थात् शरीर में।

हैं प्रतिमूरति दोऊ दुहू की बिधो प्रतिबिंब वही घट दूनै१,
एकहि देव दुदेह दुदेहरे देव दुधा यक देह दुहू मैं२ ॥१६२॥

कवि युगल स्वरूप का वर्णन करता है। बिधो (बिधि) = तरह; प्रकार। दुधा = द्विधा (द्वाभ्यां प्रकारेण) दो प्रकार से।

जे बिन देखे गए दिन बाति नयो पछिताउ अरो हिय हैए,
देवजू देखि उन्हैं हौं दुखी भई या जिय को दुख काहि दिखैए;
देखे बिना दिखसाधन हो मरि देखु री देखत ही न अघैए,
देखत-देखत-देखत ही रही आप ही देही न देखन पैए ॥१६३॥

अरो = अड़ा। दिखसाधन = देखने की साधें (कामनाएँ)। अपनी देह इस कारण से नहीं देख पाता है कि नायक को देखकर आपे को भूल जाती है।

दिना द्वै यौवन जीवन की मरिए पचि होइ जुपै मरिबे न,
सबै जग जानत देव सुहाग की संपति भौन रही भरिबे न३;
कहा कियो सौति कहाय कै काहू लरौ पिय लोभ तऊ लरिबे न४,
असीसनहू५ को महा करिबे न कछू अब मोहि रही करिबे न॥१६४॥

१. वही (ईश्वरीय) परछाईं दोनों शरीरों में बिधा हुई (व्याप्त) है। यह भी अर्थ हो सकता है कि एक ही प्रकार का प्रतिबिंब दोनों घटों में है।

२. वास्तविक देव एक ही है, जो दो देहों-रूपी देहरों (मंदिरों) में है, अथवा एक ही देव दो भाग होकर दोनों देहों में है।

३. सोहाग की संपत्ति घर में भरना शेष नहीं है, अर्थात् वह पूर्णतया प्राप्त हो चुकी है।

४. यदि कोई सपत्नी पति के लालच से मुझसे लड़े, तो भी मुझे उससे लड़ना नहीं है।

५. आशीर्वचनों की भी यथार्थता पूर्ण करनी शेष नहीं है, अर्थात् सारे आशीर्वाद भी सफल हो चुके हैं। इन कारणों से नायिका कृत-कृत्य है, और कहती है कि मुझे कुछ करना शेष नहीं है।

शांति को प्राप्त हुई नायिका का वर्णन है। पचि = बहुत परिश्रम करके, पक करके।

जागत-जागत खैन[1] भई, अब लागत संग सखीन को भारो,
खेलिबोऊ हँसिबोऊ रह्यो सुख सों बसिबो बिसे बीस बिसारो;
तो सुधि दैन गँवावति देवजू जामिनि जाम मनो जुग चारो[2],
नीरज-नैन निहारिए नैनन धीरज राखत ध्यान तिहारो[3]॥१६५॥

यहाँ सखी द्वारा नायिका का नायक से प्रेम-निवेदन है।

बिसे बीस = बीस बिस्वा (पूर्णतया)। भारो = भारी, बोझा, असह्य।

पहिले सतराय रिसाय सखी जदुराय पै पाए गहाए तौ,
फिरि भेंटि भटू भरि अंक निसंक बड़े खिन लौं उर लाए तौ;
अपनो दुख औरन को उपहास सबै कवि देव बताए तौ,
घनस्यामहिं नेकहुँ एक घरी को इहाँ लगि जो करि पाए तौ॥१६६॥

अभिलाषा का वर्णन है। नायिका का सखी के प्रति कथन है।

सतराय = अप्रसन्न होकर। बड़े खिन (क्षण) लौं = बड़ी देर तक।

लाल बुलाई हौ, को हैं वे लाल, न जानती हौ तो मुख्या रहिना करि,
री सुख काहे कों देखे बिना दिखसाधन ही जियरा न परो जरि;
देव तौ जानि अजान क्यों होति यही सुनि आँसुन नैन लए भरि,
सौंचे बुलाई बुलावन आई इहाँ कहि मो हू कहा करिहैं हरि[4]॥१६७॥

दिखसाधन ही = दर्शन की इच्छाओं से।

1. खाया।
2. रात के चारो पहर चारो युगों के समान हो गए हैं।
3. तुम्हारा ध्यान ही उसका धैर्य रखता है।
4. मुझे बुलाकर क्या करेंगे? उपालंभ गर्भित कथन है।

✓ जिन जान्यौ बेद ते तौ बाद कै बिदित होहिं,
जिन जान्यौ लोक तेऊ लीक पै लरि मरौ;
जिन जान्यौ तपु तीनौं तापन सों तपौ, जिन
पंचागिनि साध्यौ ते समाधिन परि मरौ।
जिन जान्यौ जोग तेऊ जोगी जुग-जुग जियौ,
जिन जान्यौ जोति तेऊ जोति लै जरि मरौ;
हौं तौ देव नंद के कुमार तेरी चेरी भई,
मेरो उपहास क्यों न कोटिन करि मरौ ॥१६८॥

इस छंद में कवि वेद में वाद, लोक में लीक, तप में त्रिताप, पंचाग्नि में समाधि, योग में दीर्घायु और ज्योति में उष्णता-मात्र देखता है, अथच प्रेम अथवा भक्ति को सर्व-प्रधान मानता है।

बाद = विवाद। लीक = सीमा (लोक-रीति)। तीनौं तापन = तीनो ताप, अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

✓ बैठी सीस-मंदिर मैं सुंदरि सवार ही की,
मूँद के कॅवार देव छबि सों छकति है;
पीत-पट लकुट मुकुट बनमाल धरि,
भेप करि पी को प्रतिबिंब मैं तकति है।
होति न निसंक उर अंक भरि भेंटिबे को,
भुजन पसारति समेटति जकति है;
चौंकति चकति उचकति चितवति चहूँ,
झूमि ललचाति मुख चूमि न सकति है ॥१६९॥

सवार ही = प्रातःकाल से। लकुट = छड़ी।

प्रेम - चरचा है अरचा है कुल नेम न
रचा है चित और अरचा है चित चारी को१ ;
छोड़्यो परलोक नर-लोक घर लोक कहा,
हरख न सोक ना अलोक नर-नारी को।
घाम सित मेह न विचारै सुख देह हू को,
प्रीति ना सनेह२ डरु बन ना अँध्यारी को ;
भूलेहू न भोग, बड़ी बिपति बियोग-बिथा,
जोगहू ते कठिन सँयोग पर-नारी को ॥ १७० ॥

नायिका परकीया है। नेम न रचा है = नियमों से विरुद्ध है। अलोक = आलोक, ज्योति।

प्रेम-गुन बाँधि चित चंग३ सो चढ़ायो उन,
सुनि-सुनि बंसी-धुनि चंग४ मुरचंग५ की ;
मधुर मृदंग सुर ऊरझि उतंग भई
रंग परबीन ऐसी बाजनि अभंग की।

---

१. (मति को छोड़कर) चित्त पर चलनेवाले को केवल प्रेम की चर्चा और अर्चा (पूजा) है, अथच कुल-नियम उसके लिये नहीं बना है, तथा चित्त और (कहीं) अरचा (नहीं रंजित) है।

२. प्रणय, प्यार। प्रीति ना सनेह = प्रेम का प्यार न करे, अर्थात् पूरा प्रेम पाने की आशा न करे।

३. पतंग।

४ तेज़ घुमानेवाला।

५. मुरचंग बाजा। प्रेम निवेदन है। उन्होंने (नायिका) ने तेज़ मुरचंग के समान वंशी-ध्वनि सुन-सुनकर अपना चित्त प्रीति की डोरी में बाँधकर पतंग-सा चढ़ा दिया।

बधिक बिहंग बधू, ब्याध ज्यौं कुरंग नारि,
हनी है कुरंग नैनी पारधी[1] अनंग की;
संग-संग डोलति सखीन के उमंग भरी,
अंग-अंग उठै री तरंग स्याम-रंग की॥ १७१ ॥

गुन = डोरा । उतंग = ऊँचा । कुरंग नैनी = मृग-नैनी (नायिका)।

सुखसार सिवार सरोवर ते ससि सीस बँधे बिधि के बल सों[2],
चकई-चकवा तजि गंग-तरंग अनंग के जाल परे छल सों[3];
कमलाकर तें कढ़ि कानन मैं कल हंस कलोलत हैं कल सों[4],
चढ़ि काम के धाम धजा फहरात सुमीनन काम कहा जल सों[5]।

नायिका के प्रेम-योग्य नेत्रों का वर्णन है।

सिवार = शैवाल। अनंग = कामदेव। कमलाकर = जलाशय। कल = मधुर ध्वनि।

---

१. बहेलिया, शिकारी।

२. नायिका के नेत्र-मीन मानो सुख-पूर्ण सरोवर के शैवाल से निकाले जाकर दैव-योग से चंद्रमा के माथे पर (नायिका के मुख-चंद्र पर) बाँधे गए हैं।

३. या कि गंगा की तरंगों को छोड़कर चकई-चकवा छल से काम के जाल में पड़े हैं।

४. अथवा जलाशय से निकलकर हंस का अच्छा जोड़ा वन में आराम से केलि कर रहा है।

५. यद्वा ये नेत्र नहीं हैं वरन् काम के मंदिर की दो फहराती हुई पताकाएँ हैं। अब इन नेत्र रूपी मीनों को जल की आवश्यकता कहाँ है?

नैननि मैं ठाढ़ेई सुनावैं स्रवननि बैन,
बैन बसैं रसना हिए हू परसी मरौं१;
देखौं न सुनौं न बैन बोलि न मिलौं न बिनु
देखि-सुनि बोलि-मिलि आँसु बरसी मरौं।
देखत दुखति सुनि सुखति बिलात बोल
मिलेहू मलिन ह्वै कै लाज सरसी मरौं२;
एते पर देखिबे को, सुनिबे को, बोलिबे को,
देव हियो खोलि मिलिबे को तरसी मरौं ॥ १८३ ॥

परसी = एक प्रकार की छोटी मछली। बरसी = बरसाते हुए, अर्थात् ढालते हुए। सरसी = वृद्ध से।

नाखिन३ टरत टारे, आँखि न लगत पल,
आँखिन लगे री स्यामसुंदर सलोने से;
देखि-देखि गातन अघात न अनूप रस
भरि-भरि रूप लेत आनँद अचौने से।

१. नायक नैनों में खड़ा (सामने प्रस्तुत) है, श्रवण कानों में वचन सुनाता है (बात कर रहा है), किंतु नायिका के बैन जिह्वा में बसे हैं (वह अबोल है, अर्थात् उसके वचन जिह्वा का निवास नहीं छोड़ते), और तो भी हृदय में वह मछली के समान (बोलने आदि को) तड़पती है।

२. लज्जाधिक्य से नायिका देखने से दुःखित होती है, बात सुनने से सुख आता है, बोल से बिला जाती है, अर्थात् इतना सिकुड़ती है, मानो अंतर्धान हो गई है, और मिलने से मलिन होकर लाज की वृद्धि से मरी-सी जाती है।

३. क्षण।

एरी कहि कोहौं हौं कहाँ हौं कहा कहति हौं,
कैसे बन-कुंज देव देखियत भौन-से;
राधे हौ सदन बैठी कहती हो कान्ह-कान्ह,
हा हा कहु कान्ह वे कहाँ हैं को हैं कौन-से ॥१७४॥

साढ़े तीन पदों में नायिका का कथन है, और आधे में दूती का।

अचौन = कटोरा। आचमन करने का साधन।

कान्हमई वृषभानु-सुता भई प्रीति नई उनई जिय जैसी,
जानै को देव बिकानीसि डोलै लगै गुरु लोगन देखे अनैसी;
ज्यौं ज्यौं सखी बहरावति बातन, त्यौं-त्यौं बकै वह बावरी-ऐसी,
राधिका प्यारी हमारी सौं तू कहि काल्हि की बेनु बजाई मैं कैसी[1]।

अनैसी = बुरी। बहरावति = बहलाती है। सौं = शपथ।

✓ दुहू मुख-चंद ओर चितवैं चकोर, दोऊ
चितै-चितै चौगुनो चितैबो ललचात हैं;
हासनि हँसत बिन हाँसी बिहसत मिलैं
गातनि सौं गात, बात बातनि मैं बात हैं।
प्यारे तन प्यारी पेखि पेखि प्यारी पिय तन,
पियत न खात नेकहूँ न अनखात हैं;
देखि ना थकत देखि-देखि ना सकत देव,
देखिबे की घात देखि-देखि ना अघात हैं॥ १७६॥

संयुक्त प्रेम का वर्णन है। अनखात = रुष्ट होते हैं।

महत्वपूर्ण

1. इस पद में जो कथन है, वह स्वयं राधिकाजी बावली-सी होकर तथा प्रेमोन्मत्तता के कारण अपने को श्याम समझकर कर रही हैं।

देवजू या मन मेरे गयंद को रैनि[1] रही दुख-गाड़ महा है,
प्रेम पुरातन मारग बीच टकी अटकी दृग मेल-सिला है;
आवो उदास नदी अँसुवान की बूड़्यो चढ़ी चलै बलु का है,
साहुनी[2] ह्वै चित चीत री अरु पाहुनी ह्वै गई नींद बिदा है।

रैनि रही दुख-गाढ़ = रात दुःख का गढ़ा हो गई है। दृग टकी = दृष्टि की स्थिरता (टकटकी)। बलु का ह्वै = किस बल से। साहुनी = साहूकार की स्त्री, अर्थात् ऊँचे मनवाली।

उठी अकुलाय सुनी जब नेक कला परबीन लला ब्रजराज,
बिसारि दई कबि देव तुम्हैं अवलोकत ह्या अरु लोक की लाज;
इते पर और चवाव चल्यौ बरजैं घर जे गुरु लोग समाज,
कहाँ लगि लाज कछू कहिए, इतनी सहिए सब रावरे काज।

नायिका नायक से अपनी प्रेम-दशा का वर्णन करती है।

चवाव = बुरी चर्चा, पैशुन्य।

जागत हू सपने न तजौं अपनेई अयानपने को अँधयारो,
क्योंहूँ छिपात छिपै न दिनौ-निसि देह दिपै दुति देव उज्यारो;
नैनन ते निचुरयो परै नेह रुखाई के बैनन को न दरयारो,
दूरि रह्यो किन जीवन मूरि जु पूरि रह्यो प्रतिबिंब ज्यों प्यारो।

---

१. हाथी को फँसाने के लिये प्रायः रात को गढ़ा खोदा जाता है।

२. चित्त में चीतकर (चिंता करके, विचार करके) नींद साहुनी के समान अभिमानिनी हो गई, अर्थात् बुलाने से नहीं आती, और पाहुनी के समान शीघ्र बिदा होकर चली गई।

अयानपने का अंधकार प्रेम है । नायिका कहती है, प्रेम मूर्खता अथवा अंधकार-पूर्ण ही सही, किंतु मुझे वह सोते-जागते छोड़ता नहीं है । वह प्रेम दिन-रात क्षण-भर को भी नहीं छिपता है । उससे देह दीप्ति-पूर्ण है, अथच उसकी कांति उजियाली है । प्रयोजन यह है कि प्रेम को कोई मूर्खता या अंधकार-पूर्ण भले ही कहे, किंतु वास्तव में वह उज्ज्वल है । स्नेह के अर्थ प्रेम तथा तेल दोनों के हैं । स्नेह चिकना माना गया है, इसी से कथन हुआ है कि जब नेत्रों से स्नेह निचुड़ा पड़ता है, तब रूखे वचनों का एतबार नहीं है । जब प्रेमी प्रत्येक स्थान में छाया की भाँति प्रतिबिंबित है, तब वह जीवनाधार दूर कहाँ रहा ?

अरिकैं वह आजु अकेले गई खरिकै हरि के गुन रूप लुही १,
उनहूँ अपनो पहिराय हरा मुसक्यायकै गायकै गाय दुही;
कवि देव कह्यो किन कोई कछू, तब ते उनके अनुराग छुही २,
सब ही सों यहै कहै बाल-बधू, यह देखु री माल गुपाल गुही ।

अरिकै = अड़ करके । खरिकै = जहाँ गाएँ और ग्वाल एकत्र हों, वह स्थान । लुही = लुभी ।

'खरक'-शब्द हिंदी के कोश में है । इसके माने गोशाला के हैं ।

चित दै चितऊँ जित ओर सखी, तित नंदकिशोर कि ओर ठई,
दसहू दिसि दूसरो देखति ना छबि मोहन की छिति माहँ छई;
कवि देव कहाँ लौं कछू कहिए, प्रतिमूरति हौं उनहीं की भई,
ब्रजबासिनि को ब्रज जानि परै न भयो ब्रज री ब्रजराज मई ॥८१॥

१. लोट-पोट हुई ।
२. रँगी हुई ।

ब्रजवासियों को ब्रज समझ ही नहीं पड़ता है, क्योंकि सारा ब्रज ब्रजराज (भगवान्) मय हो गया है।

* ठई = स्थित।

ए अपनी करनी किन देखत देव कहीं न बनाइ कछू मैं,
घायल ह्वै करसायल १ ज्यौं मृग त्यौं उतही ऋतुरापल २ घूमैं;
मेटिबे को तनतापन दुहू भुज भेटिबे को झपटैं झुकि झूमैं,
चित्र के मंदिर मित्र तुम्हें लखि चित्र की मूरति को मुख चूमैं।

नायक नायिका की तसवीर देखकर उद्विग्न हो जाता है। सखी नायिका से नायक की दशा का वर्णन करती है।

आँखिमिहीचनि ३ खेलत मोहिं दुहू बिधि सोध कहूँ नहिं जाइ न,
चोर ह्वै सोर ४ कै नंदकिसोर री जाइ छिपै पै कहूँ सटि जाइ न;
नैन-मिहीचौं जु रे उनके तजि लाज सनेह कहूँ हटि जाइ न ५,
नाथ हा! हाथ सरोजसे मेरे करेरे कटाच्छ कहूँ कटि जाइ न ६।

१. काला मृग।

२. आतुरता से, जल्दी है।

३. आँख मुँदौवल।

४. चोर-मिहीचनी का नियम है कि प्रत्येक खेलनेवाला चोर से छिपता है, किंतु एक बार जोर से पुकार देता है कि खोजो। जिसको चोर खोज ले, वह दूसरे बार के खेल में चोर हो जाता है।

५. यदि लाज छोड़कर नायक के नैन बंद करूँ, तो स्नेह वश कहीं हाथ न हट जाय कि नैन अधमुँदे रह जायँ, और वह सब देख पड़े, जिससे खेल बिगड़ जाय।

६. हे नाथ, तुम्हारे हाथ कमल-से हैं, सो मेरे कड़े कटाक्षों से कहीं कट न जायँ।

इस छंद में नायिका अपने प्रेमाधिक्य का कथन करती है। मोहि=मोहित होकर। दुहु विधि सोध=दोनो प्रकार (चित्त के भीतर-बाहर) का खोज। नटि जाइन=नष्ट न हो जाय, चला न जाय। सोर कै=शोर करके। सटि जाइन=चिपक न जाय, अर्थात् ऐसा छिप जाय कि खोज न मिले। जु=यदि। हा!=विस्मय। करेरे=पैने।

(२१)

मन

रूप को रसिकु रसलंटु परस लोभी
राग ही सों रँग्यो बसै बासु लै अड़ाइतो[१];
मारचो नहीं जातु बिनु मारे न डेरातु घरी
काम करै खोटे छोटे बड़े सों बड़ाइतो[२]।
होइ जो हमारो कोई हितू हितकारी यासों
कहै समुझाय देव कुमति छुड़ाइतो;
मानै न अनेरो[३] मनु मेरो बहुतेरो कह्यो
पूतु ज्यों कपूतु लरिकाई को लड़ाइतो ॥१८४॥
तेरो कह्यो करि-करि जीव रह्यो जरि-जरि,
हारी पाँय परि-परि तऊ तैं न की सँभार;
ललन बिलोकि देव पल न लगाए तब,
यों कल न दीनी तैं छलन उछलनहार[४]।

१. अविनत, हठी (पांचो इंद्रियों के सुख अर्थ मचलनेवाला)।
२. छोटे और बड़े में अपने को बड़ा समझता है।
३. अन्यारा, अनोखा।
४. हे मन ! तू छलने के लिये उछलता (उत्तेजित होता) है।

ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हौं बँधाई
    आपु बिधि बूड्यो माँझ बाधा सिंधु निराधार :
एरे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीन्हे, अब
    एकैवार दैके तोहि मूँद मारौं एक बार ॥२८५॥

बिधि बूड्यो = विधि-पूर्वक डूबा, अच्छी तरह डूब गया या फँसकर डूब गया। माँझ = बीच में। कैवार = किवाड़े। कपाट पलकें हैं।

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ि आयो[१],
    तामैं तीनौ लोक बूड़ि गए यक संग मैं;
कारे कारे आखर लिखे जु कारे कागर,
    सुन्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चित भंग मैं।
आँखिन मैं तिमिर अमावस की रैनि जिमि
    जंबुरस - बुंद जमुना - जल - तरंग मैं;
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,
    स्याम रंग ह्वै करि समान्यो स्याम-रंग मैं ॥२८६॥

आखर=अक्षर। जंबु=जामुन। औचक=एकाएक। कागर=कागज।

मैं समुझायो नहीं समुझै मन को अपनो अपमान न सूझै,
मोहन मान करै तौ गरे परि देव मनैबे को जाइ अरूझै;
काको भयो सबसों बिगरो यह जाकारे[२] मेरे सु तो बात न बूझै,
सौति हमारी सो प्यारे की प्यारी ता प्यारे के प्यार परोसी सों जूझै।

नायिका नायक के विषय में उपालंभ प्रकट करती हुई अपने मन का वर्णन करती है। अरूझै = उलझै।

---

१. मन अंधकार में पड़कर भला-बुरा नहीं देखता।

२. जिसके वास्ते।

सूनेहूँ नैन लखे न तबै अब पैए कहाँ जब चाहत हेरो,
कान करे नहिं कान तबै तकि कान लगे अकुलान घनेरो;
लाजहि जाइ मिले उतए, इत माँहि मिले मग मेटत मेरो[1],
मेटौं मनोरथ हौं इनको तौ मिटै मन मेरे मनोरथ तेरो॥१८८॥

कान करे इत्यादि—कान करे नहिं (हे नेत्र, तब तुम सचेत या सजग नहीं हुए, या तुमने नायक की बिनती न मानी)।

कान तब तकि (तब कान्ह को देख करके) कान लगे (तुमने लाज की)।

कान लगे अकुलान—इस काल कुल-कानि में लगे हुए तुम अब व्याकुल होने लगे।

गोत-गुनान उतै इत प्रीति सुचादरि-सी अँखियान पै खैंची,
टूटै न कानि दुहू दुखदानि की देवजू हौं दुहू ओर ते ऐंची;
सील लटो न हियो पलटो प्रगटो सुनिरंतर अंतर कैंची,
या मन मेरे अनेरे दलाल ह्वै हौं नंदलाल के हाथ लै बैंची॥१८९॥

उधर कुल मर्यादा का घमंड था, और इधर प्रेम ने आँखों पर चद्दर-सी तान दी, जिससे कुल आदि कुछ देख ही न पड़ते थे। इन दोनो दुखदायियों की मर्यादा नहीं टूटती थी, जिससे नायिका का चित्त दोनो ओर खिंचता था। न तो शील (कुल-संबंधी महत्त्व) न्यून हुआ, न (प्रेम-पूर्ण) हृदय का ढंग पलटा, जिससे चित्त के अंदर सदैव स्थिर रहनेवाली कैंची-सी उत्पन्न हो गई (कैंची जब काटती है, तब उसमें दोनो ओर से एक दूसरी से प्रतिकूल शक्तियाँ काम करती हैं।), तो भी मेरे मन ने अन्यायी दलाल बनकर मुझे लेकर भगवान् के हाथ बेच दिया, अर्थात् उनके प्रेम के वश कर दिया।

१. उस काल ये नेत्र उधर लज्जा को मिल गए, तथा इधर मुझसे मिलकर मेरा (सु) मार्ग मेट रहे हैं।

गोत-गुमान = कुल का अभिमान । कानि = मर्यादा । घटो (घटा) = न्यून (दुर्बल) हुआ । अनेरे = अन्यायी ।

चरननि चूमे, छुवे छवानि, ह्वै चकित देव,
झूमिके दुकूलन न घूमि करि घटि गयो;
कोरे कर-कमल करेरे कुच कंदुकनि
खेलि-खेलि कोमल कपोलननि पटि गयो।
ऐसो मन मचला अचल अंग-अंग पर,
लालच के बात लोक-लाजहि ते हटि गयो;
लट मैं लटकि लोइननि मैं उलटि करि
त्रिबली पलटि कटि-तटी माहिं कटि गयो ॥१६०॥

मन के माध्यम नायिका के नखशिख का वर्णन है।

नायक का मन चरणों को चूमकर, एड़ियों को छूकर तथा दुकूलों में झूमने से चकित होकर भी वापस न हुआ, न उसका अधिकाधिक अंग देखने की इच्छा घटा। अछूते कमल-समान हाथों तथा गेंदों के समान कड़े कुचों से खेल-खेलकर वह मुलायम गालों पर छा गया।

छवानि = एड़ियों को। लोइननि मैं उलटि करि = आँखों को उलटा करके (मग्न होकर)।

जीभ कुजाति न नेकु लजाति गनै कुल-जाति न बात कह्यो करै[1],
देव नयो हिय नेह लगाय बिदेह कि आँचन देह दह्यो करै,
जीव अजान न जानत जान जो मैन अयान के ध्यान रह्यो करै,
काहे को मेरो कहावत मेरो जुपै मन मेरो न मेरो कह्यो करै[2]॥

बिदेह = कामदेव। जान = ज्ञान। अयान (अजान) = अज्ञान।

---

१. बात कहन करती (कहती) है।

२. मन मेरा कहलाता भर है किन्तु मेरा क्यों है, जब कि मेरा मन मेरा कहना ही नहीं करता।

प्रानप्यारे पति को करत अपमान, तब
जानत न, देव अब प्रान तन खोत क्यों ;
रोगी ज्यों सुबात बात कहत सम्हारत न,
इत उतपात१ उत पात कीन पोत क्यों।
कोसत है आप अपसोस करै आपही ते,
रोस करि तब तौ रिसात अब रोत क्यों ;
पूँछै किन कोई मन पीछे पछितात कहा,
सूर छत जोय छिति मूरछित होत क्यों ॥१६२॥

कलहांतरिता नायिका का वर्णन है। सुबात = सन्निपात से पीड़ित दशा में प्राय: रोगी अर्य-बाय बकता है, उस दशा से अभिप्राय है। उतपात = उपद्रव। पोत = जहाज़। छत = क्षत। जोय = देख करके।

(२२)

विरह

आई नहीं तन मैं तरुनाई भई नहीं स्याम के संग सँयोगिनि,
कौने सिखाई धौं सीख कहा सुमिरै धरि ध्यान मनो जुग जोगिनि;
भोजन बास न हास विलास उसास भरै मनौ दीरघ रोगिनि,
आँखिन ते अँसुवा नहिं सूखत एकई बार ह्वै बैठी बियोगिनि।

धौं = या (यह एक अव्यय है, जो ऐसे प्रश्नों के पहले लगाया जाता है, जिनमें जिज्ञासा का भाव कम और संशय का अधिक होता है)। जुग जोगिनि = पूरे युग से जैसे योगिनी। दीरघ रोगिनि = बड़े रोगवाली। एकई बार = एकबारगी।

१. इधर तो मान द्वारा उत्पात किए, फिर उधर उसी मान के लिये पत्ते का जहाज़ क्यों बनाया, अर्थात् मान को डुबो क्यों दिया ?

वेई ससि-सूरज उवत निसि-द्यौस, वही
नखत-समूह झलकत नभ न्यारो सो ;
वेई देव दीपक समीप करि देखे, वही
दून्यौ करि देख्यो चौगून्यौ हौ उजारो-सो ।
वेई बन-बागन विलोकै सीस-महल,
कनकमनि मोती कछू लागत न प्यारो सो ;
वाही चंदमुखी की वा मंद मुसुकानि बिन
जानि परो सब जग अधिक अँधियारो सो ॥१६४॥

वेई = वही । उवत = उदय होते हैं । दून्यौ करि देख्यो = दुगना देखा, अर्थात् बहुत देखा ।

घोर लगै घर बाहिरहू डर नूतन नूत दवागि जरे-से ,
रंगित भीतिन भीति लगै लखि रंगमही रनरंग ढरे-से१ ;
धूम घटागर धूपनकी निकसै नवजालन ब्याल भरे-से२ ,
जे गिरि-कंदर-से मनि-मंदिर आज भए उजरे३ उजरे-से ॥१६५॥

घोर डर = अतिशय भय । नूत न नूत = जो नए नहीं (अर्थात् पुराने) हैं, और जो नए हैं, ये दोनो दावानल से जले हुए दिखाई देते हैं । नूत आम को भी कहते हैं । रंगमही = विहार-स्थान । धूम घटा=गर = अगर के धूम का समूह । अगर की लकड़ी जलाने से सुगंधि देती है ।

१. रँगी हुई दीवारों को देखकर डर लगता है, तथा विहार-स्थल देखकर (ऐसा भान होता है कि ये) ढाले हुए (पूरे) युद्धस्थल हैं ।

२. धूपों (सुगंधित धूमवाला धूप) तथा अगर के धूम से घटाओं का समूह नहीं निकलता है, वरन् उसमें नवीन सर्प-से भरे हुए हैं । ज्वालों में नवीनता यह है कि वे आग से निकलते हैं ।

३. उ (वे) जलकर उजड़-से गए हैं ।

पून्यो१ प्रकास उदो उकसाइकै आसहू पास बसाइ अमावस२,
दै गए चित्त मैं सोच-बिचार, सु लै गए नींद छुधा बल बावस;
है३ उत देव बसंत सदा इत है४ उत है हिय-कंप महा बस,
है५ सिसिरो निसि ग्रीषम के दिन आँखिन राखि गए रितु पावस६।

नायिका की विरह-दशा के अंतर्गत षट् ऋतुओं का वर्णन है। उदो = उदय को। बावस = बलात्कार से। अथवा वहाँ रहते हुए। है उत है = हेमंत-ऋतु है।

ना यहु नंद को मंदिर है वृषभान को भौन कहा जकती हौ,
हौंहीं कि ह्याँ तुमहीं कवि देवजू काहि धौं घूँघट कै तकती हौ;
भेटती मोहिं भटू किहि कारन कौन की धौं छबि सों छकती हौ,
कैसी भई हौ कहौ किन कैसेहू कान्ह कहाँ हैं कहा बकती हौ॥

जकती हौ = भौचक्की होती हौ।

---

१. शारदीय चंद्र तथा नायिका के मुख से अभिप्राय है; यहाँ शरद् ऋतु का निर्देश है।

२. नायिका के केश-कलाप से अभिप्राय है, जो विरह-वश खुले हुए हैं।

३. जहाँ नायक है, वहीं वसंत-ऋतु है, तथा वहीं पर सब आनंद की सामग्री है, एवं यहाँ हेमंत है।

४. नायिका का विरह में हृदय काँपने से हेमंत-ऋतु का अभिप्राय है।

५. नायक के विरह में नायिका के लिये रात्रि शिशिर-ऋतु की रात्रि के समान बड़ी है, तथा दिन ग्रीष्म-ऋतु के दिन के समान बड़े हैं। इस चरण में शिशिर तथा ग्रीष्म-ऋतुओं का निर्देश है।

६. नेत्रों से अश्रु-धारा का बहना मानो पावस-ऋतु है।

देखे दुख देत चेत१ चंद्रिका२ अचेत करि,
चैन न परत चंद चंदन को टारि दै;
बीजन लगी है छबि, बीजन३ करे न बीर,
नीजन४ सुहात है सखीजन निवारि दै।
साए सजि सेजन करेजन मैं सूल उठै,
जारि दै उसीर५ कुटी, रावटी उजारि दै;
फूँकै ज्यों फनीद६ री फूल-माल को न नीरी करि,
पबीरी बरी ऐ जाति या बौरी बगारि दै ॥१६८॥

रावटी = छोटा ख़ेमा या बँगला। पबीरी = बौरी, पगी। बगारि दै = फेंक दे।

केलि के बगीचे लौं अकेली अकुलाय आई,
नागरि नवेली बेली हेरत हहरि परी;
कुंज-पुंज तीर तहँ गुंजत भँवर-भीर,
सुखद समीर सीरे नीर की नहरि परी।
देव तेहि काल गूँथि ल्याई माल मालिनि, सो
देखत बिरह-बिष-ब्याल की लहरि परी;
छोह-भरी छरी-सी छबीली छिति माहिं फूल-
छरी के छुअत फूलछरी-सी छहरि परी ॥१६६॥

---

१. चैत।
२. चाँदनी।
३. पंखा।
४. निर्जन।
५. ख़स।
६. सर्प।

छहरि परी = दुःखित हो गई। नहरि परी = नहर उसके सामने पड़ी। बिरह-विष-ब्याल की लहरि परी = मानो विरह-रूपी विषैले सर्प-दंश से मूर्च्छित हुई है। छोह-भरी = प्रेम-भरी। फूल-छरी = फूलों की छड़ी। छहरि परी = हाथ-पाँव फैलाए हुए गिर पड़ी। जैसे फूल की पँखुरी झड़कर होती है, मानो वैसी दशा हुई।

सूधे हा सिखाई कै सखीन समुझाइ हाती,
देव स्यामसुंदर के सौंहे[1] समुहाती क्यों;
बिचरि बिचारे बीच बैरी होते बंधु कत,
बिरह की बेदन बिकल बिलखाती क्यों।
जगमगी जोन्ह ज्वाल-जालनि सों जारती क्यों,
जमजाई[2] जामिनी जुगंत सम जाती क्यों;
कवैलहाई क्वैलिया की काल - ऐसी कूकै सुने,
कौल की-सी कलिका कुँअरि कुँभिलाती क्यों॥२००॥

जमजाई जामिनी = काल-रात्रि। जुगंत = युगांत। कवैलहाई = कोयला-सी काली। क्वैलिया = कोयल। कौल (कौल) = कमल।

बालम बिरह जिन जान्यो न जनम-भरि,
बरि-बरि उठै ज्यों-ज्यों बरसै बरफ राति;
बीजन डुलावति सखीजन त्यों सीत हू मैं,
सौति के सराप तन तापनि तरफराति।
देव कहै सासनि ही अँसुवा सुखात, मुख
निकसै न बात ऐसी ससकी सरफराति;

१. सामने उपस्थित क्यों होती।
२. यमराज की पुत्री।

लौटि-लौटि परति करौंट खट-पाटी लै-लै,
सूखे जल सफरी-ज्यों सेज पै फरफराति ॥२०१॥

बरफ = ठंडी ओस। सराप (शाप) = दुर्वचन। ससकी = श्वासोच्छ्वास। सफरी = मछली।

जागी न जोन्हाई लागी आगि है मनोभव की,
लोक तीनो हियो हेरि-हेरि हहरत है;
बारि पर परे जलजात जरि बरि-बरि,
बारिधि ते बाड़व-अनल पसरत है।
धरनि ते लाइ झरि छूटी नभ जाइ, कहै
देव जाहि जोवत जगत हू जरत है;
तारे चिनगारे-ऐसे चमकत चहूँ ओर,
बैरी बिधु-मंडल भभूको-सो बरत है ॥२०२॥

बाड़व-अनल (बाड़वानल) = समुद्र की आग। चाँदनी नहीं छिटकी है, वरन् कामदेव की आग लगी है, (जिसके कारण से) तीनो लोकों को देख-देखकर हृदय घबराता है। तालाब के कमल विरहानल से जल-जलकर पानी पर गिर पड़े (अर्थात् पानी में रहने पर भी वह उन्हें बचा न सका, क्योंकि स्वयं तप्त हो गया), अथच जल-जलकर समुद्र से बाड़वानल आगे फैलता है (अर्थात् समुद्र में नहीं समाता)। पृथ्वी से लाइ झरि (अग्नि की झार) जाकर आकाश में छूटी, जिसे देखते ही सारा संसार भी जल रहा है।

साँसन ही सों समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि,
तेजु[1] गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु की तनुता करि;

1. अग्नि अपने गुण (नेत्रों से रूपों की ग्रहण-शक्ति) को लेकर चली गई।

देव जियै मिलिबे ही कि आस कि आसहू पास अकास रह्यो भरि,

जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जु लियो हरिजू हरि ॥

कवि इस छंद में (विरह के वश) पंचतत्त्व-निर्मित शरीर का विनाश वर्णन करता है ।

समीर = वायु ; यहाँ प्राण-वायु से प्रयोजन है । तेजु = अग्नि । तनुता = कृशता ।

वे बतियाँ छतियाँ लहकैं दहकैं बिरहागिनि की उर आँचैं,

वा बसुरी को परयो रसु री इन कानन मोहन मंत्र-से माँचैं ;

कौ लगि ध्यान धरे मुनि लौ रहिए कहिए गुन बेद से बाँचैं,

सूझत ना सखि आन कछू निसि-दौस वई अँखियान मैं नाँचैं ॥

दहकैं = जलैं । माँचैं = छा जावें, मचैं ।

इभ-से भिरत, चहुँघाइं सों घिरत घन,
  आवत झिरत झीने झरसों झपकि-झपकि ;
सोरन मचावैं नचैं मोरन की पाँति चहुँ-
  ओरन ते कौंधि जाति चपला लपकि-लपकि ।
बिन प्रानप्यारे[1] प्रान न्यारे होत, देव कहै
  नैन बरुनीन रहे अँसुवा टपकि-टपकि ;
रतिया अँधेरी, धीर न तिया धरति, मुख
  बतिया कढ़ै न, उठै छतिया तपकि-तपकि ॥२०५॥

इभ-से = हाथी समान । चहुँघाइं = चारो तरफ़ से । झिरत = गिरते, झिरते । झीने = पतले । झरसों=छोटी बिंदुओं की वर्षा करते हुए । झपकि-झपकि = घिर-घिरकर । कौंधि = चमक जाते ।

१. प्राण ही दूसरे हो जाते हैं ।

आँसुन के सलिल सिरावती न छाती जो,
उसास लागि कामागि भसम होतो होतो;
केसरि कुसुम हू ते कोरी जो न होती, तौ
किसोरी सों कुसुम-सर कौनी भाँति जीततो।
देवजू सराहिए हमारो न्याउ छाऊ करि,
नाहित अहित चेत करो जु चीततो;
कोकिला के टेरत निकार जातो जीव, जो
तिहारे गुन गनत उघेरत न बीततो ॥२०६॥

सखी नायक को नायिका की विरह-दशा सुनाती है।

उसास = दीर्घ श्वास। कामागि = कामाग्नि। कोरी = साफ। कुसुम-सर = फूल के बाणवाला अर्थात् कामदेव। न्याउ = न्याय। छाऊ = हिम्मत। चेत = चैत। चीततो = जो चितता। गुन गनत उघेरत = गुण गिनना और बिखेरना अर्थात् स्मरण करना। उघेरना का शाब्दिक अर्थ उकलना है।

कंत बिन बासर बसंत लागे अंतक-से,
तीर-ऐसे त्रिबिध समीर लागे लहकन;
सान-धरे सार-से चँदन घनसार लागे,
खेद लागे खरे[१] मृगमेद लागे महकन।
फाँसी-से फुलेल लागे गाँसी-से गुलाब अरु
गाज अरगजा लागे, चोवा लागे चहकन;

१. चंदन घनसार (कपूर) सान-धरे लोहे-से लगे, तथा मृगमेद के महकने से खरे खेद लगे (विशेष संताप हुआ)।

अंग - अंग आगि-ऐसे केसरि के नीर लागे,
चीर लागे जरन, अबीर लागे दहकन ॥२०७॥

अंतक = यमराज। सान-धरे सार = सान पर चढ़ा हुआ (तेज़ किया हुआ) लोहा। घनसार = कपूर। मृगमेद = कस्तूरी (मृग-मद)। गाँसी = शस्त्रों के आगे का भाग। अरगजा = एक सुगंधित द्रव्य, जो केशर, चंदन, कपूर आदि को मिलाकर बनाया जाता है। चोवा = एक सुगंधित द्रव्य, जो कई सुगंधित वस्तुओं को मिलाकर, उसको जोश देकर रस टपकाने से बनता है। विशेषतया चंदन का बुरादा, देवदार का बुरादा, मरसे के फूल, केशर और कस्तूरी इसके बनाने में पड़ते हैं। दहकन = लूका लगना।

खोरि लौं खेलन आवतीयै न तौ आलिन के मत मैं परती क्यों,
देव गुपालहि देखतीयै न तौ या बिरहानल मैं बरती क्यों;
माधुरी मंजुल आँब की बालि सुभालि-सी ह्वै उर मैं अरती क्यों,
कोमल कूकि कै कोकिल कूर करेजनि की किरचैं करती क्यों।

बरती = जलती। भालि-सी = बरछी की-सी। अरती = गड़ती। किरचैं = टुकड़े।

(२३)

खंडिता

देव जु पै नित चाहिए नाह तौ नेह निबाहिए देह मरयो परै,
त्यों समुझाय सुझाइए राह अमारग जो पग धोखे धरयो परै;
नीके मैं फीके ह्वै आँसू भरे कत ऊँची उसास गरो क्यों भरयो परै,
रावरो रूप पियो अँखियान भरयो सुभरयो उबरयो सुढरयो परै।

खंडिता नायिका नायक से कहती है—

नायिका—यदि चित्त में पति की कामना हो, तो शरीर चाहे मर भी जाय, किंतु स्नेह निभाना चाहिए। जी यदि धोखे में भी बुरी राह पर पैर धरे, तो उसे समझाकर राह दिखलाना चाहिए।

नायक—अच्छी दशा में मन में फीकापन लाकर आँसू क्यों भरती हो, और ऊँची उसास से तुम्हारा गला क्यों भर-भर आता है?

नायिका—आप ही का रूप इन आँखों ने पान किया है। वह भरा है, सो भरा ही है, किंतु जो भरने से भी बचता है, वह ढरका पड़ता है। तात्पर्य यह है कि नायक अन्य स्त्री-रत है, जिससे व्यंग्य द्वारा नायिका कहती है कि उसका रूप नायिका के नेत्रों में इतना भरा है कि समाता तक नहीं है। जो रोने में आँसू गिरते हैं, वे मानो आँसू नहीं हैं, वरन् नायक का रूप है, जो नेत्रों में न समाकर बाहर ढरका पड़ता है। व्यंग्य से प्रयोजन यह दिखलाया गया है कि नायक के दर्शन नायिका को बहुत कम होते हैं। दोनो आदिम पदों में भी नायिका प्रकट में नायक से कोई शिकायत नहीं करती, वरन् यह दिखलाती है कि उसके कुमार्ग-रत होने के कारण जो नायिका का मन विचलित होता है, सो नायक का दोष न होकर उसी के मन का दोष है, और उसी मन को समझाना चाहिए।

हित की हितू री, नहिं तू री समुझावै आनि,
सुख दुख मुख सुखदानि को निहारनो[१];
लपनै[२] कहो को बालपने की बिकल बातें,
अपने जनहिं सपनेहू न बिसारनो।

१. सुख और दुख दोनो ही अवस्थाओं में सुख देनेवाले के मुख का निहारना योग्य है।

२. मुख पर लाना; कहना। लपन मुख को कहते हैं।

देवजू दरस बिनु तरसि मरथो हो, पग
परसि जियैगो मन-बैरी अनमारनो;
पतिब्रतब्रती ए उपासी प्यासी अँखियन
प्रात उठि पीतम पिआयो रूप-पारनो १ ॥२१०॥

स्वकीया खंडिता नायिका का कथन सखी प्रति है।

पग परसि = पैरों को छू करके। अनमारनो = न मारा जानेवाला, अर्थात् वश में न रहनेवाला। पारनो = पारण = किसी व्रत या उपवास के दूसरे दिन किया जानेवाला पहला भोजन और तत्संबंधी कृत्य।

आए हो पैन्हि प्रभात हिए पर जानि परै कछु ज्योति उज्यारी,
आरसी लै किन देखिए देवजू पाई कहाँ केहि नेह निहारी;
कै बनमाल किधौं मुकुतावलि कंचन की कि रची रतनारी२,
स्याम कहूँ, कहुँ पीत, कहूँ सित, लाल कहूँ उर-माल तिहारी३।

नायक ने अन्य रमणी के साथ रमण किया, ऐसा जानकर नायिका नायक पर इस विषय पर आक्षेप करती है। नायक के हृदय पर अन्य रमणी के मुक्तावली के चिह्न उपटे हुए होने से प्रौढ़ा नायिका व्यंग्य द्वारा नायक पर दोष लगाती है।

पैन्हि = पहनकर। नेह निहारी = स्नेह से देखा है।

---

१. पीतम प्रात उठि पतिब्रतब्रती इन उपासी प्यासी अँखियन (आँखों को) रूप-पारनो पिआयो। प्रयोजन यह है कि नायक ने प्रातःकाल आकर नायिका को दर्शन दिया।

२. या यह माल लाल सोने की बनी है। यह भी कहा जा सकता है कि रत्न और सोने से माला रची है।

३. कस्तूरी के संसर्ग से काली, केशर से पीली तथा चंदन से शुभ्र अथवा लाल है।

आजु गोपालजू बाल-बधू सँग नूतन-नूतन कुंज बसे निसि,
जागर होत उजागर नैनन पाग पै पीरी पराग पगी सिसि;
चोज के चंदन खोल खुले जहँ ओछे उ़लीत रहे उर मैं घिसि,
बोलत बान लजात-से जात हैं, आए इलीत चितौत चहूँ दिसि।

जागर = जागरण। उजागर = प्रकट (उजियाले के समान प्रकट)। चोज = थोड़ा, चमत्कार-पूर्ण ढङ्ग, जिससे लोगों का मनोविनोद हो। यहाँ चोज शब्द का अर्थ 'थोड़ा' होता है। शब्द पारिजात-कोष में इस शब्द का अर्थ 'थोड़ा' लिखा भी है)। इलीत = इत, उत (इधर उधर) करते हुए।

(२४)

उपालंभ

मंजुल मंजरी पंजरी-सी ह्वै मनोज के ओज सम्हारति चीर न,
भूख न प्यास न नींद परै परी प्रेम अजीरन के जुर जोरन;
देव घरी-पल जात घुरी अँसुवान के नीर उसास-समीरन,
आहन जाति अहीर अहे तुम्हें कान्ह कहा कहौं काहू कि पीर न।

दूती नायक (श्रीकृष्ण) के विषय में उपालंभ प्रकट करती हुई नायिका की वियोग-दशा का वर्णन करती है।

पंजरी = पिंजड़ा। आहन = लोहा।

पूतना को पय पान करो मनु पूत-नाते बिसवास बगारत१,
देव कहा कहौं मातु-पिता-हित-बंधुन सों हितु सों के निवारत;

---

१. मानो पुत्र होने के नाते से उसके शरीर में विष के निवास-स्थान को खोजते हैं। संबंध्य कथन है।

कारे१ हौ कान्ह निकारे हौ कीलि रहे गुन लीलि पै औगुन थाहत,
पन्नग२की मनि कीन्हें तुम्हैं तुम पन्नग की किचुली कियो चाहत३।

पूत-नाते = पुत्र के नाते से। वगाहत = पैठ करके जानना। कीलि (कीलकर) = वह मंत्र, जिससे सर्प वश किया जाय। पै औगुन थाहत = किंतु अवगुणों की थाह लेते हो ; अतः पर सीमा तक सदोष हो।

मोही मैं छिपे हौ मोहिं छुवावत न छाँहौं, तापै
छाँह भए डोलत इतै पै मोहिं छरिहौ ;
मच्छ सुनि कच्छप बराह नरसिंह सुनि,
बावन परसुराम रावन के अरि हौ।
देव बलदेव देव दानव न पावैं भेव,
को हौ जू कहौ जू जो हिये की पीर हरिहौ ;
कहत पुकारे प्रभु-करुना-निधान कान्ह,
कान मूँदि औरै ह्वै कलंकी कहि करिहौ ॥२१॥

---

१. हे कान्ह, तुम काले सर्प हो, और मंत्र द्वारा कीलकर (परवश होकर) निकाले गए हो, और गुण लील चुके हो, किंतु अवगुण की थाह लेते हो अर्थात् बुरी बातों की सीमा तक पहुँचते हो। प्रयोजन यह है कि नायिका ने उन्हें सर्प के समान कीलकर अपने प्रयोजन से स्ववश किया, किंतु वह उसके वश में नहीं होते।

२. सर्प।

३. हम तो तुम्हें सर्प की मणि के समान सिर पर धारण किए रहे हैं, अर्थात् तुम्हारा अत्यंत सम्मान करते रहे हैं, किंतु तुम हम लोगों को सर्प की केंचुल की तरह समझते हो, अर्थात् हमको तुच्छ समझ करके छोड़ते हो।

रत्नावली-अलंकार है।

नायिका नायक (भगवान्) के विषय में प्रत्यक्ष उपालंभ प्रकट करती है। कवि ने भगवान् के दसों अवतारों का वर्णन इस छंद में किया है।

रावरे पाँयन ओट लसै पग गूजरी बार महावर ढारे[1],
सारी असावरी की झलकै, छलकै छबि घाँवरे घूम घुमारे;
आओ जु आओ दुरावो न मोहूँ सों देवजू चंद दुरै न अँध्यारे;
देखौ हो कौन-सी छैल छिपाई तिरीछे ह्वै नैन वहै पीछै निहारे।

नायिका नायक को अन्य रमणी से संबंध रखने का दोष लगाती हुई उसके विषय में उपालंभ प्रकट करती है। नायक के पीछे वास्तव में कोई स्त्री है नहीं, केवल उसे चौंधियाने को ऐसा कथन है।

ओट = आड़। गूजरी = अहीरिनि। वह = अन्य रमणी से अभिप्राय है।

मोहि तुम्हैं अंतरु गनै न गुरजन, तुम
मेरे, हौं तुम्हारी पै तऊ न निधरक हौ;
पूरि रहे या तन मैं, मन मैं न आवत हौ,
पंच पूँछि देखे कहूँ काहु ना निकत हौ।
ऊँचे चढ़ि रोई, कोई देत न दिखाई देव,
गातनि की ओट बैठे बातन गिलत हौ;
ऐसे निरमोही सदा मोही मैं बसत, अरु
मोही ते निकरि फेरि मोही न मिलत हौ॥२१७॥

पंच = (१) लोग बाग; (२) पंच ज्ञानेंद्रियाँ। गिलत हौ = पी जाते हौ, अर्थात् प्रकट नहीं होने देते। हौ = हृदय।

---

१. उस अहीरिनि के बाल पैरों तक पहुँचते हैं तथा (नायक द्वारा लगाए जाने के प्रस्वेद के कारण) उसका महावर ढरका हुआ है। गूजरी पैर में पहनने के एक आभूषण को भी कहते हैं।

केतकी के हेत कीन्हे कौतुक कितेक तुम,
पैठि परिमल मैं गए हौ गड़ि गात ही;
मिले मल्लि-बल्लिन लवंग-संग छिजे, दुरि
दाड़िम न पिले पुनि पाँड़र की घात ही।
कीन्ही रस-केली साँझ चूमत चमेली बाँझ,
देव सेवतीन माँझ भूले भहरात ही;
गोद लै कुमोदिनि विनोद मान्यो चहूँ कोद,
छपद छिपे हौ पदुमिनि मैं प्रभात ही॥ २१८॥

नायक पद्मिनी नायिका को तजकर इतर बहुतेरियों से प्रेम करता है, इसका उपालंभ है। फूलों का वर्णन है। कितेक = कितने ही (बहुत-से)। परिमल = मकरंद। गात ही = शरीर-सहित (केवल मन ही नहीं)। मल्ली=बेला। बल्लिन = लताओं में। दुरि दाड़िमनि पिले = छिपकर अनारों में घुसे। छिपकर कहने का यह प्रयोजन है कि दाड़िम के तोड़ने में अधिक समय लगता है, सो एकांत में छिपकर उसे तोड़ा, जिसमें कोई दूसरा आकर साक्षी न हो जाय। जिस काल इतना परिश्रम करके दाड़िमों में घुसे थे, तब उनमें विराम करना था, किंतु ऐसा न करके भ्रमर ने फिर पाँड़र (एक प्रकार की पीली चमेली) में भी घात लगा रक्खी थी। चमेली बाँझ इसलिये कही गई है कि उसमें फल नहीं होते। पिले = घुसे। सेवतीन = जंगली गुलाबों। भहरात ही = ज़ोर से गिरते हुए। कोद = तरफ़। छपद = षट्पद (भौंरा)।

लागी प्रेम-डोरि खोरि साँकरी ह्वै कढ़ी आनि,
नंद सों निहारि जोरि आली मन मानती;
उतते उताल देव आए नँदलाल, इत
सौहैं भई बाल नव लाल सुख सानती।

कान्ह कह्यो टेरिकै कहाँ ते आई, को हौ तुम,
लागतीं हमारे जान काई पहिचानती;
प्यारी कह्यो फेरि मुख हेरिजू चलेई जाहु,
हमैं तुम जानत, तुम्हैं हूँ हम जानतीं ॥ २११ ॥

खोरि = गली। साँकरी = तंग। निहोरि = नम्रता-पूर्वक। सोहैं = सामने।

साँझ नै हौं गई देखन को उतै नाचत नंद जसोमति को नट,
वा मुसुकाय कै, भाव बताय कै, आय कै मेरो खरो पकरो पट;
तौ लौं जु गाय रँभाय उठी,कहि देव बधून मथ्यो दधि को मट,
जानि परो,न तो कान्ह कहूँ, न कदंब को कुंज,न कालिंदी को तट।
नातो कहा तुमसों तुम को हो जु कान्ह छुवो कछु अंग न वाको,
क्यों छुवैं अंग पै देखत है जु जराऊ तरौनान[1] मैं रुचि रवा को;
कौने कह्यो हो बिजायठो बाँधन[2] यों गिरि जातो जु डोरु भवा को,
बाल परे लड़ बावरी बातन हौं ठग गनौंगी न नंद बवा को[3]।

जराऊ = जड़ाऊ। रवा = रत्न का टुकड़ा। बिजायँठो = बजुल्ला (भूषण)। झवा (झब्बा) = एक ही में बँधे हुए रेशम या सूत।

इस छन्द में कवि सखी और नायक के परस्पर संवाद का वर्णन करता है। सखी का भाषण उपालम्भ सहित है।

१. कान में पहनने का आभूषण, जो फूल के आकार का गोल होता है। कर्णफूल; कनफूल।

२. इस प्रकार से बजुल्ला बाँधने को किसने कहा था, यदि झवा का डोर गिर जाता, तो कैसा होता?

३. लंगरपन की बात में पड़े हो, मैं नंद बाबा को ठग न गिनूँगी। ठग का प्रयोजन निरादर सूचक अपमान से है।

पहले तथा चौथे चरण में सखी के वाक्य हैं, और शेष दोनों में भगवान् के।

आदि के बहुत-से तारों का गुच्छा, जो कपड़ों या गहनों आदि में शोभा बढ़ाने के लिये लटकाया जाता है।

केसरि सों उबटे सब आंग, बड़े मुकुतान सों माँग सँवारी,
चारु सुचंपक-हार गरे, अरु ओछे उरोजन की छबि न्यारी;
हाथ सों हाथ गहे कबि देवजू साथ तिहारे हौं आजु निहारी,
हाहा हमारी सौं साँची कहौ वह कौन ही छोहरी छीबरवारी॥२२३॥

नायिका नायक को अन्य रमणी के साथ देखकर आक्षेप करती है।

छीबर = एक प्रकार की चूनरी।

काल्हि ही साँझ उड़यो कर माँझ ते देव खरो तब ते उर साल्यो,
एक भली भई बाग तिहारे ही श्रीफल औ' कदली चढ़ि हाल्यो;
बंचक बिंबनि चंचु चुभावत कुंज के पिंजर मैं गहि घाल्यो,
हौं सुकहूँ नहिं राखि सकी सुकहूँ सुन्यो तैंही पगेसिनि पाल्यो।

नायिका नायक के विषय में शिकायत करते हुए कहती है कि परोसिन ने नायक को शुक की तरह पाल लिया है, अर्थात् अपने वश में कर लिया है।

श्रीफल = बिल्वफल, बेल, नारियल। बिंबनि = कुँदरू-फलों। चंचु = चोंच। घाल्यो = डाल दिया। सुकहूँ = शुक (तोता) को भी।

राधे कही है कि ते छमियो ब्रजनाथ जिते अपराध किए मैं,
कानन तान न भूलत, ना खिन आँखिन रूप अनूप पिए मैं;
आछे हिये अपने दिन-राति दयानिधि देव बसाय लिए मैं,
हौं ही असाधु बसी न कहूँ पल आधु अगाधु तिहारे हिए मैं॥२२४

तान = अलापना। खिन = पल। असाध = असाध्वी, बुरी।

(२५)

मान

ओंठन ते उठि पीठि पै बैठि कँधान पै ऐंठि मुरयो मुख मोरनि,
देव कटाच्छन ते कढ़ि कोप लिलार चढ़यो बढ़ि भौंह मरोरनि;
अंक में आए मयंकमुखी लई लाल को चंद चितै दृग-कोरनि,
आँसुन बूड़यो उसास उड़यो कि यों मान गयो हिलकी की हिलोरनि।

लघु मान का वर्णन है।

मयंकमुखी = चंद्रमुखी। हिलकी की हिलोरनि = रुदनमय हिचकी की लहरों में।

सखी के सकोच गुरु सोच मृगलोचनि
रिसानी पिय सों जु नेकु उन हँसि छुयो गात :
देव वै सुभाय मुसुकाय उठि गए यहि
सिसिकि-सिसिकि निसि खोई रोय पायो प्रात।
कौन जानै बीर बिन बिरही बिरह-बिथा,
हाय-हाय करि पछिताय न कछू सोहात;
बड़े-बड़े नैननि ते आँसू भरि-भरि ढरि
गोरो-गोरो मुख आजु ओरो सो बिलानो जात॥२२६॥

कलहांतरिता नायिका का वर्णन है।

बिलानो जात = नष्ट हुआ जाता है।

इस छंद की व्याख्या 'मिश्रबंधु-विनोद' की भूमिका में है।

प्यारी हमारी सौं आवौ इतै कबि देव कुप्यारी ह्वै कैसेक ऐए,
प्यारी कहौ मति मोसौं अहो कहि प्यारी प्यो प्यार की प्यारी बुलैए;

कै वह प्यारु कै एतो कुप्यारु औ' न्यारी ह्वै बैठि कै बात बनैए,
प्यारे पराए सों कौन परेखो१ गरे परि कौलगि प्यारी कहैए।

मानिनी परकीया नायिका का वर्णन है। कौलगि = कब तक।

(२६)

सखी की शिक्षा

गौने कि चाल चली दुलही गुरु नारिन भूषन भेष बनाए,
सील सयान सबै सिखएरु सबै सुख सासुरेहू के सुनाए;
बोलियो बोल सदा अति कोमल जे मनभावन के मन भाए,
यों सुनि ओछे उरोजनि पै अनुराग के अंकुर-से उठि आए।

इंद्र ज्यों राज कुबेर ज्यों संपति त्यों दृग दीपति लाज धरे री,
बालक बान दै बोरध पान दै अंजन सान दै क्यों निदरे री;
गोकुल मैं कुल तो कुल पै कहूँ उज्जल तो-से सुभाय भरी री,
इंदु मैं आगि पियूष में ज्यों बिष देव त्यों तो मुख बात करे री।

तेरा इंद्र का-सा राज्य एवं कुबेर का-सा धन-समूह है, तथा तेरे नेत्र लाज की प्रभा धारण किए हुए हैं, किंतु तू उन पर अंजन-रूपी सान (बाढ़) धरकर क्यों उनका निरादर करती है। तेरा यह कर्म ऐसा है, जैसे वृद्ध का पान खाना (शृंगार करना), या बालकों को तीर देना। गोकुल में तो कुल (बहुत-से), कुल (वंश) हैं, किंतु तेरे समान उजले सुभाव से भरे हुए व्यक्ति कहाँ हैं ? ऐसी गुण-युक्ता जो तू है, उसके मुख से कड़ी बात का निकलना ऐसा ही है, जैसे चंद्रमा में अग्नि या अमृत में विष। उत्तमा सखी।

१. हिसाब।

केती न नागरि नौल-बधू तुम ही गुन-आगरि आईं न गौने,
देव सकोचनि सोचति क्यों मृग-लोचनि लोचनि ह्वै ललचौने१;
पी को पियूष सखी सुर-रूख ते दूखत सूखत या मुख मौने,
मान के मंदर रूप-समुंदर इंदु ते सुंदर सील सलौने२।

मध्यमा सखी।

नौल = नवल = नवीन।

बैठी कहा धरि मौन भटू रँगभौन तुम्हें बिन लागत सूनो,
चातक लौं तुमहीं रटि देव चकोर भयो पिनगो करि चूनो;
साँझ सुहाग की माँझ उदौ करि मौनि सगोजन को मन लूनो,
पावस३ ते उठि कीजिए चैत अमावस ते उठि कीजिए पूनो॥२३१॥

उत्तमा सखी की शिक्षा।

चूनो = चुगाकर।

१. हे मृगनयनी! तू ललचवाने के योग्य नेत्रवाली होकर भी संकोचों से क्यों सोचती है?

२. हे सखी, इंदु ते सुंदर, रूप-समुंदर, सील सलोने, सुर-रूख पी को पियूष (अमृत-सा प्रेम) मान के मंदर या मुख मौने ते सूखत (अथच) दूखत। प्रयोजन यह है कि कल्पवृक्ष के समान एवं रूप के समुद्र पति का भी प्रेम तेरे मंदराचल-समान भारी मानभव मौन से सूखता एवं दूषित होता है। सखी मान-मोचनार्थ शिक्षा देती है।

३. 'पावस' से नायक के रोने से तथा 'चैत' से उसके प्रफुल्लित होने से अभिप्राय है।

सखी नायिका को नायक के पास जाने के लिये उत्तेजित करती है, और उसका परिणाम यह दिखाती है कि नायक तुम्हारे विरह में जो अश्रु धारा गिरा रहा है, उस प्रफुल्लित करो, और अपने मुख-चंद्र से वहाँ के अँधेरे को मिटाकर प्रकाशमय करो।

नेह लगाय निहोरे करावत नाहक नाह कहावत जैसे,
साथ के सेंकत हाथ जरे घर कौन बुझावै मिले सब तैसे;
वाहि न घूँघट की घट की सुधि अंग अनंग जरै पजरै-से,
क्यों[1] न गहै कर तू तिनके जिनकी करतूतिन के फल ऐसे ॥२३२॥

मध्यमा सखी।

सखी नायक के विषय में उपालंभ प्रकट करती हुई स्वकीया नायिका को शिक्षा देती है। निहोरे = विनय। घट की = शरीर की। पजरै = झरना।

रावरे रूप लला ललचानी ये जानी न काहू बिकानि औ' ऐसी,
हैं सत-हीन सताई ततौ तुम सगति ते उतरी उत तैसी;
न्याव निवेरो न हो यह नेह को जानत हौ तुमहूँ हम जैसी,
देखिबे ही को भरौ सिसकी तिनते रिसकी चरचा कहौ कैसी॥२३३

पहले दो पद नायक से कहे गए हैं, और अंतिम दो नायिका से। हे लला! ये तुम्हारे रूप से ललचाकर ऐसी बिकी हैं कि कोई यह भेद भी नहीं जानता। जो तुमने इधर सताया (प्रेम की कमी से),

---

१. तू (नायिका) तिनके (नायक के) कर (हाथ) क्यों न गहै (क्यों नहीं पकड़ती), जिनकी करतूतिन के (जिनके कर्मों के) फल ऐसे हैं।

तू स्वामी से प्रेम लगा। इस प्रकार बिनती कराती है, मानो उनका तुझ पर कोई अधिकार ही नहीं, अथच वह तेरे स्वामी निष्कारण कहलाते हैं। तेरे साथ के लोग ऐसे हैं, मानो घर जलने पर बुझाने के स्थान पर तापते हैं। तेरे पति को तेरे घूँघट तथा अपने शरीर की भी याद नहीं है, और कामदेव से उसके अंग झरने के समान जल रहे हैं (प्रयोजन यह है कि आग ऐसी प्रचंड है कि झरना तक जल रहा है)। अश्रु-बाहुल्य से झरने का कथन और भी उचित है।

उससे सत-हीन (सार-पदार्थ से रहित अर्थात् दुबली) हैं, और उधर स्वजनों के साथ से भी उतर गई हैं। हे सखी! यह स्नेह (मान) के निबटाने का न्याय नहीं है, तुम जानती हो कि मैं जैसी (बड़ी उचित वक्ता) हूँ। जिसके देखने-भर के लिये रोया करती हो, उससे क्रोध की बात ही क्या है!

बारियै बैस बड़ा चतुरै हौ बड़े गुन देव बड़ीऐ बनाई,
सुंदरै हौ सुघरै हौ सलोनी हौ सील भरी रस रूप सनाई;
राजबहू बलि राजकुमारि अहौ सुकुमारि न मानौ मनाई,
नैसिक नाह के नेह बिना चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई॥२३४॥

अधमा सखी की कठिन शिक्षा मानिनी नायिका के प्रति है। नैसिक = थोड़ा (नैसर्गिक = शुद्ध स्वाभाविक)।

(२७)

काव्यांग

चोरी लगै चहुँ ओर चितौतु, कलंक लगै मग मैं पगु दै री,
दंतनि दाबि रहौं अँगुरी, अँगुरी कहुँ नेकु जु पै उघरै री;
देव दुरै रहिए हँसिए नहि बैरिनि बैस किए जग बैरी,
जौन चिरै रहिए घर मैं तौ घनै घिरि आवत हैं घर घेरी॥२३५॥

स्वभावोक्ति।

चितौतु = चितवत (देखने से)। दैरी = पुरी! दए (देने से)। नेकु = थोड़ी। बैस = अवस्था (वयस); नवीन का अध्याहार है। बैरी = बदनामी करनेवाले।

आई हौं देखि बधू इक देव सुदेखतै भूली सबै सुधि मेरी,
राख्यो न रूप कछू बिधि के घर ल्याई है लूटि लुनाई कि ढेरी;

देव कहै लाख-लाख भाँति अभिलाष पूरि
पी के उर उमगत प्रेम-रस पूर है।
तेरो कल बोल कल भापिनि ज्यों स्वाति-बुंद,
जहाँ जाइ परै, तहाँ तैसोई समूर है;
व्याल-मुख बिष ज्यों, पियूष ज्यों पपीहा मुख,
सीपी-मुख मोती, कदली-मुख कपूर है॥ २३८॥

कवि नायिका के मधुर भाषण तथा उसके गुणों का वर्णन करता है। छंद उल्लेख अलंकार का अच्छा उदाहरण है।

समूर = मूल = आदिकारण।

✓जब ते कुँअर कान्ह रावरी कलानिधान
कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी-सी;
तब ही ते देव देखी देवता-सी हँसति-सी,
खीझति-सी रीझति-सी रूसति रिसानी-सी।
छोही-सी छली-सी छीनि लीनी-सी छकी-सी छीन,
जकी-सी टकी-सी लगी थकी थहरानी-सी;
बींधी-सी बँधी-सी बिष-बूड़ी-सी बिमोहित-सी
बैठी वह बकति बिलोकति बिकानी-सी॥ २३९॥

प्रेमोन्मत्ता नायिका के भावों का वर्णन है। खीझति = झँझलाती। छोही = अनुरागिनी हुई। टकी-सी = टकटकी-सी बाँधे है। थहरानी=कंपित हुई। समुच्चयालंकार है।

उज्ज्वल उज्यारी-सी झलमलाति झीनी झाँई,
झाँई-सी दिपति देह-दीपति बिसाल-सी;

जोबन की जोतिन सों, हीरा लाल मोतिन सों
नख ते सिखा लौं मिलि एकै ह्वै महा लसी।
बोलनि हँसनि मंद चलनि चितौनि चारु-
ताई चतुराई चित चोरिबे की चाल-सी;
संग मैं सहेली सोन-बेली-सी नबेली बाल
रँगमगे अंग जगमगति मसाल-सी॥ २४०॥

नायिका की कांति का वर्णन। झीनी = बारीक। झाईं = ज्योति-पूर्ण आभा। देह-दीपति = शरीर की कांति। बिसाल = बड़ी। महा लसी = बहुत शोभित हुई। सोन-बेली = कनक-लता। नवेली = नवीन स्त्री। रँगमगे = रँग (प्रेम) में मग्न; खूब रँगे हुए।

नारि जु बारिज-सी बिकसी रहै प्रेमकसी पिक-सी कल कूजै;
जा बड़ भाग के भौन बसी तेहि पीतम के चलिकै पग छूजै।
और कहा कहिए तेहि द्वार की दासी ह्वै देव उदास न हूजै;
आँखिन को सुख सुंदरि को मुख देखत हू दिखसाध न पूजै।

स्वकीया नायिका का वर्णन है।

बिकसी (विकसित) = प्रफुल्लित। कूजै = कोमल शब्द करती है। दिखसाध = देखने की महती इच्छा।

बूझै बड़े बबा नंद को बंस जसोमति माय को मायको बूझत,
बोलत बातें बड़ी बन मैं मन मैं बृपभानु बबा सों अरूझत;
देव दबीं हम नेह के नाते न तौ पुरखा इन बातन जूझत,
जीभ सँभारि न काढ़त गारि हो ग्वारि गँवारि हमै हरि बूझत।

कुलगर्विता नायिका का वर्णन है।

मायको = नैहर। जूझत = लड़ते-झगड़ते। बूझत = समझते हो।

चितै चैत-चंद्रिका महल चंद्रिका ते छिपि
चली चंद्रमुखी जोर जोवन बनक ते;
गुपित गलीन लखि लाज भय लीन सुनि
लाल परबीन कर बीन की भनक ते१।
नूपुर अनूप सुर दाबत हथेरी उर,
आवत न जात बनै आहट तनक ते;
सासुन की सकुच उसासन गनति, उठि
संचित तनत भौंह किंकिन-भनक ते२॥ २४२॥

मुग्धा शुक्लाभिसारिका नायिका का वर्णन है।

आहट = आने-जाने का शब्द, जो चलने में पैर तथा दूसरे अंगों से होता है। उसासन गनति = श्वासों को गिनती है, अर्थात् श्वास के शब्द को भी छिपाती है कि कहीं कोई सुन न ले।

---

१. चैत्र की चाँदनी को देखकर अपने चाँदनीवाले महल से जोबन के बनाव से (प्रसन्न) शशि-वदनी प्रवीण नायक के हाथ की वीणा की झनकार को सुनकर एवं छिपी हुई गलियों को देखकर हया और डर से लीन (तन्मय) होकर शीघ्रता से छिपकर चली।

२. बिछुवा के अपूर्व स्वर तथा हृदय को हथेली से दाबती हुई (चली तो), किंतु थोड़ी भी आहट के कारण आते-जाते नहीं बनता है। नायिका जेठियों के संकोच-वश अपनी साँसें तक गिनती थी (कि कहीं ज़ोर से साँस न निकल जाय), तथा किंकिणी की झनकार से भौंहें उठकर तन जाती थीं।

इंदीबर१-नैनी इंदु-मुखी सुधा-बिंदु-हास,
इंदिरा२-सी सुंदरि गुबिंद-चित-चाह-सी ;
नैननि उनैसी३ लाज सैननि सुनैसी काज,
चैननि चुनैसी४ नाह सोहैं कहूँ न हसी५ ।
प्रीति भीति प्रगट प्रतीति रीति गुपित,
दिपति पति दीपति छिपति छबि माह सी ;
आगे-आगे आनन अनूप को उज्यारो रूप,
पाछे-पाछे प्यारो लग्यो डोलै परछाह-सी ॥ २४४ ॥

स्वकीयात्व की मुख्यता है ।

सोहैं = सामने । सैननि सुनैसी काज=संकेतों से ही काम समझ लेनेवाली । दिपति पति दीपति = पति के प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होती है । छबि माह = शोभा में ।

प्रानपती के प्रभात पयान प्रभाकर कोटि हुनो प्रतिकूल-सो,
रैहैं क्यों प्रान पलै पहिलें दिन दूसरो दौस दसा दुख-मूल-सो ;
नेह रच्यो बिरहागि तच्यौ प्रिय-प्रेम पच्यौ पजरै तन तूल-सो६,
सासनि दूखि उसासनि रूखि गयो मुख सूखि गुलाब के फूल-सो।

प्रवत्स्यत्पतिका नायिका का वर्णन है । दूखि=दूषि; दोष लगाकर।

सबेरे प्राणेश्वर का चलना है, सो करोड़ सूर्य ख़िलाफ़ हो गए, अर्थात् इतना संताप हुआ, जितना करोड़ सूर्यों की शत्रुता से होता।

---

१. कमल ।

२. लक्ष्मी ।

३. विरी-सी ।

४. चुनकर एकत्र करे ।

५. पति के सामने कभी हँसी भी नहीं ।

६. पति की प्रीति में घुला हुआ शरीर रुई-सा जला जाता है ।

पहले ही प्रलय-समान दिन को प्राण क्योंकर रहेंगे (और यदि किसी भाँति रहे भी), तो दूसरे दिन की दशा दुख-मूल के समान होगी । अंतिम दोनो पद उत्कृष्ट हैं ।

खरी दुपहरी हरी भरी फरी कुंज मंजु,
गुंज अलि-पुंजनि की देव हियो हरि जाति ;
सीरे नद-नीर तरु सीतल गहीर छाँह,
सोवैं परे पथिक पुकारैं पिकी करि जाति ।
ऐसे मैं किसोरी भोरी कोरी कुम्हिलाने मुख
पंकज से पाय धरा धीरज सों धरि जाति ;
सौंहे घाम स्याम मग हेरति हथेरी ओट,
ऊँचे धाम बाम चढ़ि आवति उतरि जाति ॥ २४६ ॥

उत्कंठिता नायिका का वर्णन है । फरी = फल-युक्त । गहीर = गंभीर; घनी । कोरी = अछूती । सौंहे = सामने । मग हेरति मार्ग की प्रतीक्षा करती है । हथेरी ओट = हाथ की आड़ । दूर तक देखने को या सूर्य की किरण बचाने को ।

कैधौं हमारियै बार बड़ो भयो कै रवि को रथ ठौर ठयो है१.
भोर ते भान की ओर चितौति घरी पल हू गननो न गयो है;
आवत ओर नहीं छिन को दिन को नहिं तीसरो याम छयो है.
पाइए कैसेक साँझ तुरंतहि देखु री दौस दुरंत भयो है ॥२४७॥

नायिका नायक की प्रतीक्षा करती है । बार = बारी = बसरी । छयो है = व्यतीत हुआ है, क्षय हुआ है । दुरंत = कठिनता से अंत मिलनेवाला ।

१. या तो (दिन) मेरी ही बारी में बड़ा हो गया है, या सूर्य का रथ एक ही स्थान पर रुक गया है ।

आवन सुन्यौ है मनभावन को भावती ने,
आँखिन अनंद-आँसू ढरकि-ढरकि उठैं;
देव हग दोऊ दौरि जात द्वार-देहरी लौं,
केहरी-सी साँसै खरी खरकि-खरकि उठैं।
टहलैं करति टहलैं न हाथ-पाँय, रंग-
महलैं निहारि तनी तरकि-तरकि उठैं;
सरकि-सरकि सारी, दरकि-दरकि आँगी,
औचक उचौहैं कुच फरकि-फरकि उठैं॥ २४८॥

आगतपतिका नायिका। भावती=प्रिया। खरी=तीक्ष्ण। खरकि-खरकि=गले से आवाज़ निकलना (श्वासोच्छ्‌वास); यह 'खड़ाका' शब्द से बना है। टहलैं करति टहलैं न हाथ-पाँय=गृह-काज करने में हाथ-पैर स्तब्ध हो जाते हैं, अर्थात् मिलन की उमंग से गृह-काज में जी नहीं लगता। औचक=अकस्मात्। उचौहैं=उभरे हुए।

धाई खोरि-खोरि ते बधाई पिय आवन की,
सुनि-सुनि कोरि-कोरि भावनि भरति है;
मोरि-मोरि बदन निहारति बिहार-भूमि,
घोरि-घोरि आनँदघरी-सी उघरति है।
देव कर जोरि-जोरि बंदत सुरन गुरु-
लोगनि के लोरि-लोरि पायन परति है;
तोरि-तोरि माल पूरे मोतिन की चौक,
निवछावरि को छोरि-छोरि भूषन धरति है॥२४९॥

आगतपतिका नायिका का वर्णन है। वीप्सा की बहार है।

खोरि-खोरि=गली-गली से। कोरि-कोरि=करोड़ों प्रकार के। घोरि-घोरि = घुल-घुलकर। लोरि-लोरि = लोट-लोट करके।

प्रान-से प्रानपती सों निरंतर अंतर अंतर पारत हे री,
देव कहा कहौं बाहेर हूँ घर बाहेर हूँ रहै भौंह तरे री;
लाज न लागति लाज अहै तोहि जानी मैं आज अकाजिनि एरी,
देखन दे हरि को भरि नैन घरी किन एक सरीकिनि मेरी॥२५०॥

मध्या नायिका की लाज का वर्णन है। स्वयं नायिका अपनी लाज को संबोधित करती हुई कथन करती है। अंतर अंतर = अंतः-करण से भेद। बाहेर हूँ घर=घर में तुझे (लाज को) लादे रहती हूँ। बाहेर हूँ रहै भौंह तरे री = बाहर भी मेरी भौंहें तरे (नीचे) रहती हैं। सरीकिन=साथिन ; संग में रहनेवाली। 'शरीक'-शब्द से बना है।

साँझ ही स्याम को लेन गई सु बसी बन मैं सब जामिनि जायकै,
सीरी बयारि छिदे अधरा उरझो उर झाँखर झार मँझायकै;
तेरीसि को करिहै करतूति हुती करिबे सु करी तैं बनायकै,
भोर हीं आई भटू इत मो दुखदाइनि काज इतो दुख पायकै।

अन्य से भोगदुःखिता नायिका का वर्णन है।

दुखदाइनि काज = मुझ दुःख देनेवाली के निमित्त (नायिका के निमित्त)।

आजु मिले बहुते दिन भावते भेंटत भेंट कछू मुख भाखौ,
ये भुजभूषन मो भुज बाँधि भुजा भरिकै अधरा-रस चाखौ;

लीजिए लाल उढ़ाय जरी पट कीजिए जू जिय जो अभिलाखौ,
प्यारे हमैं तुम्हैं अंतर पारत हार उतारि इतै धरि राखौ॥२५२॥

इस छंद में गणिका का वर्णन तो है ही, पर प्रौढ़ा खंडिता का भी अर्थ निकल सकता है। हे दिन-भावते (दिन में, न कि रात में मिलनेवाले), आज बहुत ही मिले। भुज-भूषण वास्तव में न थे, वरन् अन्य नायिका के भुज-भूषण आलिंगन के कारण नायक के भुजों में गड़कर अंकित थे, सो नायिका उनका इशारा करती हुई उनके पाने की प्रार्थना करके व्यंग्य से कोप दिखलाती है। अन्य नायिका का जरी-पट पीत पट से भ्रम-वश बदल आया था, जिसका इशारा है। हार भी वास्तविक नहीं है, वरन् अन्यत्र के आलिंगन से उपटा हुआ है।

गणिका-वर्णन। भावते=हे प्यारे ! भेंट=उपहार। भुज-भूषन=बजुल्ला आदि भुजाओं पर पहनने के भूषण।

आजु गई हुती कुंजन लौं बरसै उत बुंद घनं घन घोरत[1],
देव कहै हरि भीजत देखि अचानक आइ गए चित चोरत;
पोटि भटू तट ओट बटो के लपेटि पटी सों कटी पटु छोरत,
चौगुनो रंग चढ़ो चित मैं चुनरी के चुचात लला के निचोरत।

गुप्ता नायिका वर्णन। पोटि=पुटया (पुचकार) कर। भटू=स्त्री (संबोधन-प्रयोग, प्रेम से संबोधित करना)। ओट बटो=वट-वृक्ष की आड़ में। पटी=पट, वस्त्र। पटु=वस्त्र (पटुका)।

---

१. घोरते (गरजते) हुए घन (मेघ)। घोरना देशस्थ शब्द है, जिसका अर्थ सोने में गले के बोलने का है।

खोरि मैं खेलत पीठि दिए तऊ नेह कि डीठि छुटै नहिं छूटी,
देव दुहूँ को दुहू छलु पायो सु कोलमुखी लखे नौल बधूटी१;
क्यों बिसरै निसरै मन ते ब्रजजीवन की निजु२ जीवन बूटी३,
बाल के लाल लई चिहुँटी रिस के मिस लाल सों बाल चिहूँटी।

वर्तमान गुप्ता नायिका का वर्णन है। खोरि=छोटी गली। कोल=कमल। नौल=नवल; नवीन। ब्रजजीवन=ब्रज के जीवन (कृष्ण)। लई चिहुँटी=चुटकी काटी। चिहूँटी=चिपट गई।

(८८)

उद्धव-संवाद

ऊधो आए ऊधो आए, स्याम को सँदेसो लाए,
सुनि गोपी-गोप धाए धीर न धरत हैं;
चौरी लगि दौरीं उठि भौंरी४ लौं भ्रमति मति,
गनति न ताऊ गुरु लोगनि डरति हैं।
ह्वै गईं बिकल बाल बालम-बियोग भरीं,
जोग की सुनत बातें गात यों जरत हैं;
भारी भए भूषन सँभारे न परत अंग,
आगे को धरत पग पाछे को परत हैं॥ २५५॥

चौरी लगि = चबूतरे के पास।

१. कमल-बदनी नव-वधू के देखने से दंपति ने एक दूसरे का छल जान लिया।

२. मुख्य करके।

३. दवा।

४. भौंरी (काठ का खेलवाला यंत्र) के समान उनकी बुद्धियाँ भ्रमती हैं। वे न तो ताऊ को गिनती हैं, न (अन्य) गुरुजनों को डरती हैं।

छाँड़्यो सुख-भोग मान खाँड़्यो गुरुलोगनि को,
माड़्यो हम योग या बियोग के भगल मैं;
चेली कै सहेली बन डोलति अकेली गहि,
मेली भुज बेली और सेली है न गल मैं।
देव पहिले ही पाइ फारि चितु फार्‌यौ हितु,
फारखती चाहैं कान्ह फारिबो अगल मैं१;
नाथ सों सँदेसो सूधो आदेस कहै को ऊधो,
अलख जगावैं दाबैं कूबरी बगल मैं२॥ २५६॥

गोपियाँ अपनी विरक्त दशा का वर्णन उद्धव से करती हैं।

मान=प्रतिष्ठा। खाँड़्यो=खंडित किया। माड़्यो=मंडित किया, सँवारा। भगल=छल। मेली=पहनी। ही=हृदय। फारखती (फ़ारिग़ ख़ती)=लिखा-पढ़ी करके इलाहिदा होना। अगल=पृथक। आदेस=फ़क़ीरी आज्ञा। अलख=अदृष्ट, ईश्वर। फ़क़ीर लोग भिक्षा माँगते में अलख-अलख कहा करते हैं।

जोगहि सिखैहैं ऊधो जा गहि कै पाथ हम,
सो न मन हाथ ब्रजनाथ साथ कै चुकीं;

---

१. देव कवि कहता है कि हम गोपियों ने पहले ही भगवान् को चित्त फाड़कर पाकर अपना (कुटुंबियों से) प्रेम फाड़ डाला, किंतु भगवान् हमसे फारखती चाहते हैं, जिस फारखती को हम पार्थक्य में फाड़ेंगी, अर्थात् फारखती को क़ायम न रक्खेंगी।

२. छंद का प्रयोजन यह है कि हम गोपियाँ तो वियोग ही को प्रेम-पूर्ण योग मानती हैं, सो हमें अन्य यौगिक क्रियाओं की आवश्यकता नहीं। स्वयं भगवान् बग़ल में कूबरी दाबकर अलख जगावैं। यहाँ योगियों की कुबड़ी लकड़ी के बहाने से गोपियाँ भगवान् के कुब्जावाले मिलन पर चुटकी ले रही हैं।

देव पंचसायक नचाई ख्यालि पंचन मैं,
पंचहूकरनि पंचामृत सो अचै चुकीं१।
कुल-बधू ह्वैकै हाय कुलटा कहाईं, अरु
गोकुल मैं, कुल मैं कलंक सिर लै चुकीं;
चित होत हित न हमारी नित ओर, सोऊ
वाही चितचोरहि चितौत चित दै चुकीं२॥ २५७॥

कै चुकीं=कर चुकीं। पंचहूकरनि=पंचभूत के भागों का मिलना (सृष्टि-प्रकरण का एक सिद्धांत); पंचीकरणविधि। एक-एक तत्व के पाँच-पाँच भाग होकर कपिल का सांख्यशास्त्र बना है। इसी को पंचीकरण कहते हैं। गोकुल मैं, कुल मैं=अपने वंश तथा गोकुल ग्राम में।

अंजन सों रंजित निरंजनहि३ जानैं कहा,
फीकौ लगै फूल रस चाखे ही जु चौंड़ा को४;

१. हमें कामदेव ने प्रकट रूप से पंचों में नचाया है, और पंचीकरण विधि को हम पंचामृत के समान पी चुकी हैं।

२. हमारी ओर नित्य न तो चित्त होता है न हित, क्योंकि हम देखते ही वह चित्त उस चितचोर को दे चुकी हैं। यह भी अर्थ है कि हित चित्त में होता है, किंतु वह चित्त हमारी ओर नहीं है।

३. निर्गुण ब्रह्म को। अंजन का आँखों से हटाना।

४. जो अंजन से सुशोभित हैं, वे निरंजन को (ईश्वर को, अंजन के अलग करने को) क्या जानें, क्योंकि जिसने चौंड़ा (अंगूर के मद) को पान किया है, उसे पुष्प-रस फीका लगेगा ही। प्रयोजन यह है कि जो राग में रत है, वह राग छोड़कर ईश्वर में कैसे मन लगावे, क्योंकि वह राग अध्यात्मज्ञान से श्रेष्ठतर भी है। भाव यह है कि भक्ति ज्ञान से बढ़कर है।

तूरज१ बजाय सूर सूरज को बेधि जाय,
ताहि कहा सबद सुनावत हौ डौड़ी कोर२।
ऊधो पूरे पारखी हौ परखे बनाय देव,
वार ही३ पै बोरो पैरवैया धार औड़ी४ को;
मनु मनिका५ दै हरि-हीरा गाँठि बाँध्यो हम,
तिन्हैं तुम बनिज बतावत हौ कौड़ी को ॥२५८॥

ऊधौ का वर्णन है। अंजन = काजल; अध्यात्म अर्थ में माया। रंजित = भूषित। परखे बनाय = भली भाँति परखे गए हो।

जौ न जीमैं प्रेम तब कीजै व्रत-नेम, जब
कंज-मुख भूलै तब संजम बिसेखिए;
आस नहीं पी की तब आसन६ ही बाँधियत,
सासन कै सासन को मूँदि पति पेखिए।

---

१. तुरही।

२. जो सूर (युद्ध-वीर) तुड़ही बजाकर सूर्य-मंडल को बेध जाता है (युद्ध में प्राण भी दे सकता है), उसे डौड़ी (ढिंढोरा) के शब्द से कैसे डराया जा सकता है, क्योंकि जब उसे मरण का भी भय नहीं, तब साधारण डौड़ी का भय क्या होगा?

३. इसी किनारे पर।

४. तिरछी, उलटी।

५. गुरिया, जवाहरात का टुकड़ा।

६. योग के ८४ आसन।

नख ते सिखा लौं सब स्याममई बाम भई,
बाहर लौं भीतर न दूजो देव देखिए;
जोग करि मिलैं जो बियोग होय बालम, जु
ह्याँ न हरि होयँ तब ध्यान धरि देखिए ॥२५६॥

सासन कै सासन को = श्वासों पर आज्ञा चलाकर, अर्थात् श्वासों को स्ववश करके। प्राणायाम पर उक्ति है।

कुबिजा कितेव दुबिजा के रहे आप देव,
अंस अवतारी अब तारी जिन गनिका[1];
आरति न राखत निवारत नरक ही ते,
तारत तिलोक चरनोदक की कनिका।
उनके गुनानुबाद तुमसों सुने हैं ऊधो,
गोपिन को सूधो मत प्रेम की जवनिका;
कुंजन मैं टेरिहैं जू स्याम को सुमिरि नीके,
हाथ लै न फेरिहैं सुमिरिनी के मनिका ॥२६०॥

कितेव = धूर्त; छल करनेवाले (यह 'कितव'-शब्द से बना है)। दुबिजा = दुरंगी, जारजा। कनिका = कण। जवनिका = नाटक का परदा। सुमिरिनी = छोटी माला।

कंसरिपु अंस अवतारी जदुबंस, कोई
कान्ह सों परमहंस कहै तौ कहा सरो;

1. कैतव (छल) करके दुरंगी कुब्जा के यहाँ अंशावतारी स्व' वह भगवान् अब रहे, जिन्होंने गणिका को तारा था।

हम तौ निहारे ते निहारे ब्रजबासिन मैं,
देव मुनि जाको पचि हारे निसि-बासरो।
भ्रम ग हमारे जप संजम न करैं कछू,
बहि गयो जोग जमुना-जल बिलासरो;
-गोकुल गोसायनि परम सुख - दायनि,
श्रीराधा ठकुरायनि के पायनि को आसरो ॥२६१॥

कहा भगो = क्या हुआ। निहारे ते निहारे = ध्यान-पूर्वक देखने से दृढ़ता पूर्वक देखा (जाना)। पचि हारे = परिश्रम करते-करते हार गए (थक गए)।

(२६)

देश-जाति

छिति कैसी छोनी रूप-रासि की पकोनी गढ़ि
गढ़ी बिधि सोनी गोरी कुंदन-से गात की;
देव दुति दूनी-दूनी दिन-दिन होनी और
ऐसी अनहोनी कहूँ कोई दीप सात की१।
रति लागै बौनी जाकी रंभा रुचि पौनी लोच-
ननि ललचौनी मुख-जोति अवदात की;
इंदिरा अगौनी इंदु इंदीवर बौनी२ महा-
सुंदरि सलोनी गज-गौनी गुजरात की ॥२६२॥

१. देव कहता है कि गुजरात-वधू की दूनी-दूनी कांति नित्य ही बढ़ती है, यहाँ तक कि सातो द्वीपों (की नायिकाओं) में और कहीं ऐसी नहीं होनी है।

२. चंद्रमा में कमल बोनेवाली, अर्थात् यदि चंद्र की उज्ज्वलता में कमल की कोमलता मिलाइए, तो उसके मुख की समता हो। लक्ष्मी उससे इतनी हेय है कि उसकी अगवानी को खड़ी रहती है।

प्रतीप की मुख्यता है।

छिति = पृथ्वी। छोनी = लड़की (पृथ्वी की अर्थात् जानकी)। पकोनी = पकी हुई। सोनी = सुनार (स्वर्णकार)। बौनी = बावन अंगुल की स्त्री। पौनी = तीन चौथाई ; हीनता से अभिप्राय है। अवदात = शुभ्र। अगौनी = अगवानी (पेशवाई)। गज-गौनी = गज-गामिनी।

जोबन के रंग भरी ईंगुर-से अंगनि पें,
ऍड़िन लौं आँगी छाजै छबिन की भीर की ;
उचके उचोहैं कुच झपें झलकत झीनी
झिलमिली[1] ओढ़नी किनारीदार चीर की।
गुलगुले[2] गोरे गोल कोमल कपोल, सुधा-
बिंदु बोल इंदु-मुखी नासिका ज्यों कीर की ;
देव दुति लहराति छूटे छहरात केस,
बोरी जैसे केसरि किसोरी कसमीर की ॥२६३॥

कश्मीर देश की युवती का वर्णन है। आँगी = चोलना ; अंग में पहनने का कपड़ा। कश्मीर में इसे फिरिन कहते हैं। छाजै = शोभै। झीनी = पतली। कीर = तोता।

तीनिहू लोक नचावति ऊक में मंत्र के सूत अभूत गती है[3],
आपु महा गुनवंत गुसाइनि पायनि पूजति प्रानपती है[4] ;

१. चमकदार।

२. मोटाई से मुलायम।

३. टूटते तारे की एक प्रकार की जादू करके वह तीनो लोकों को नचाती है। ऊक का कोशस्थ अर्थ उलका है। इसे जादू के मंत्रों के संबंध का छू के समान ध्वन्यात्मक शब्द भी मान सकते हैं। प्रयोजन यह बैठेगा कि मानमती की जादू-पूर्ण ध्वनियों से तीनो लोक नाचते हैं।

४. पति उसके पैरों को पूजता है।

पैनी चितौनि चलावति चेटक को न कियो बस योगि-जती है,
कामरू-कामिनि काम-कला जग-मोहनि भामिनि भानमती है॥

कामरू (आसाम) देश की जादूगरनी का वर्णन है।

ऊक = उल्का ; टूटता तारा। अभूत = जो पहले न हुआ हो, अद्भुत। चेटक = जादू। भानमती = जादूगरनी।

पातरे अंग उड़ै बिन पंखन कोयल-बानि चबानि बिरी की,
जोबन रूप अनूप निहारि कै लाज मरै निधिराज सिरी की;
कौंल-से नैन कलानिधि-सो मुख कोटि कला गुन की गहिरी की१,
बाँस के सीस अकास पै नाचति को न छक्यो छबि सोनचिरी की।

नट की स्त्री (नटिनी) का वर्णन है। बिरी = बीड़ा। निधिराज= कुबेर। सिरी = श्री = लक्ष्मी। लाज मरै निधिराज सिरी की = राज्य-श्र की निधि लाज से मरती है; अथवा उसे देखकर कुबेर की लक्ष्मी की लाज मरे (भंग हो)। सोनचिरी=सोने की चिड़िया, अर्थात् नटिनी।

माखन-सो मन दूध-सो जोबन है दधि ते अधिकै उर ईठी,
जा छबि आगे छपाकर छाँछ बिलोकि सुधा बसुधा सब सीठी;
नैनन नेह चुवै कहि देव बुझावति बैन वियोग अँगीठी,
ऐसी रसीली अहीरी अहो! कहो क्यों न लगै मनमोहनै मीठी।

अहीरिन (ग्वालिन) का वर्णन है। ईठी=इष्ट। सीठी=फीकी।

१. उस गुण-गंभीरा की करोड़ कलाएँ हैं।

ज्यों बिन ही गुन अंक लिखै घुन यों करिके करता कर भारयो१,
वारिए कोरि मची रति रानी इतो खतरानी को रूप निहारयो;
देव सुचानक देखि अचानक आनकहूँन को आनक मारयो२,
लाज लचै तिय आन रचै तो पचै बिन काज बिरंचि बिचारयो३।

कोरि=कोटि करोड़।

देव दिखावति कंचन-सो तन औरन को मन तावै अगौनी,
सुंदरि साँचे में दै भरि काढ़ी-सि आपने हाथ गढ़ी बिधि सौनी;
सोहति चूनरि स्याम किसोरी कि गोरी गुमान-भरी गज-गौनी,
कुंदन लीक कसौटा में लेखी-सि देखी सु नारि सुनारि सलौनी।

---

१. जैसे बिना अक्षर लिखने का ज्ञान रखते हुए भी घुन कभी-कभी काटते-काटते कोई १ अक्षर बना जाता है (जिसे घुणाक्षर न्याय कहते हैं), उसी प्रकार अन्यों को बनाते-बनाते बिना खतरानी-सी रूपवती बनाने की शक्ति रखते हुए ब्रह्माजी अकस्मात् उसे बनाकर ऐसे प्रसन्न हुए कि आगे ऐसा रूप बना सकने में अपने को असमर्थ पाकर तथा उससे बुरा रूप बनाने में लज्जा बोध करके उन्होंने अपने हाथ ही झाड़ दिए (वह निर्माण-कार्य से निवृत्त हो गए)।

२. देव कवि कहता है कि (ब्रह्मा ने) खतरानी को अचक्की बनक अकस्मात् देखकर आए जानेवालों का आनना (लाना) बंद कर दिया (आगे से सृष्टि-रचना ही छोड़ दी, जिससे संसार में पैदा होनेवालों का पैदा होना नष्ट हो गया)।

३. यदि बेचारा ब्रह्मा और भी बनावे, तो वह लज्जा से झुक जाय, अथच अनावश्यक कष्ट उठावे (क्योंकि खतरानी के समान रूपवती उससे अन्य रामा बन ही नहीं सकेगी)।

जाति (सुनारिन) का वर्णन है। तावै=तपावै। अगोनी=ऐसी स्त्री, जो गौने नहीं गई है। अगोनी अँगेठी को भी कहते हैं। प्रयोजन यह है कि अगोनी में औरों का मन तपाती है। बिधि सोनी=ब्रह्मा-स्वर्णकार ने।

ऍड़िन ऊपर घूमत घाँघरो तैसिए सोहति सालू कि सारी,
हाथ हरी-हरी छाजै छरी अरु जूती चढ़ी पग फूँद फुँदारी;
ऊँचे उरोज हरा घुँघचीन के हाँ कहि हाँकति बैल निहारी,
गात नहीं दिखराय बटोहिन बातन हीं बनिजै बनिजारी ॥२६६॥

बनजारी-जाति की स्त्री का वर्णन है। सालू=लाल कपड़े से प्रयोजन है। छाजै (छाजना)=शोभा देती है। बनिजै=खरीदती है।

सींची सुधा-बुंदन सों कुंदन की बेलि, किधौं
साँचे भरि काढ़ी रूप ओपनि भरति है;
पोखी पुखरागन बपुख नख सिख कर
चरन अधर बिद्रुमन ज्यों धरति है।
हीरा-सी हँसनि मोती - मानिक - दसन स्वेत,
स्यामता लसनि दृग हियरा हरति है;
जोबन जवाहिर सों जगमग होइ, जोइ
जौहरी की जोइ जग जौहर करति है ॥२७०॥

जौहरी की स्त्री का वर्णन है। इसी प्रकार रत्नों के कथन हैं। बपुख (वपुष)=शरीर। बिद्रुमन=प्रवालों=मूँगों। स्यामता=कालापन। यहाँ नीलम-मणि-रूपी आँखों की श्यामता से प्रयोजन है। जोइ (जाया)=स्त्री।

अरगजे भीजी मरगजे बागे बनी ठनी,
हाट पर बैठी अति ही सुघरपन सों;
इंदु-से बदन मृगमद-बुंद बेंदी भाल,
झलक कपोल गोल दूने दरपन सों।
मैन-मद छाके मैन-देव सुनि मोहैं मैन,
सोहैं सटकारे बार नारे सरपन-सों;
बंधु किए मधुप मदंध किए बंधु जन,
बंध्यो मन गंधी की सुगंध-झरपन सों ॥२८१॥

अरगजा=सुगंधित द्रव्य। मरगजे=मले। बागे=पहनने का कपड़ा। सुघरपन=चतुराई। मृगमद=कस्तूरी। दूने दरपन सों=दर्पण से दूने चमकनेवाले। मैन-मद=मदन अर्थात् काम के मद में। मैन=आँखों का इशारा। बंधु किए मधुप=भौंरों को बंधु (बँधुआ, क़ैदी) किया। सुगंध के वश हो भौंरे वहीं ठहर गए। झरपन सों=झपटों से।

दंपति एक ही सेज परे पग चाँपति दासि खड़ी को रिझावति
आपने ओछे उठाहि कठोर उरोजन की मनि एकहि मिलावति;
भौंहें उमेठि रहै ठकुराइनि ठाकुर के उर काम जगावति,
लौंड़ी अनोखी लड़ाइते लाल की पाँय पलोटि कि चोटि चलावति।

तिल है अमोल लोल-नैनी के कपोल गोल,
बोलत अमोल जन यारि फिरियत है;
सोभा सुने जाकी कवि देव कहै कौन को न
होत चित चाकनो चतुर चेरियत है।

बाट बाट हू में घट निपट बटोहिन के,
नेक ही निहारे नेह-मारे हेरियत है१;
सरस निदान ताके दरस की कौन कहै,
पौन हूँ के परस परोसी पेरियत है२ ॥२७३॥

तेलिन का वर्णन है। बारि फेरियत है=पानी फेरते हैं, अर्थात् नज़र उतारते हैं। निदान=आदिकारण। पौन=पवन।

१. राहगीरों के हृदयों को तेरे थोड़ा ही देखने से हम खूब स्नेह-पूर्ण पाते हैं।

२. कोल्हू तो सरसों आदि को दबाकर पेरता है, किंतु तेलिन पड़ोसियों को अपनी वायु के स्पर्श-मात्र से पेर डालती है।

अधिक अभेद रूपक के भाव की झलक है।

विनीत वक्तव्य[१]

भारतीय भूपालों में सर्वश्रेष्ठ, सहृदय हिंदी-हितैषी, काव्य-कला के कुशल पारखी, भारतीय भाषाओं की महारानी मंजु-मधुर ब्रजबानी के परम प्रेमी, देव-पुरस्कार के प्रसिद्ध प्रदाता श्रीसवाई महेंद्र महाराजा श्रीवीरसिंहजू देव ओरछाधिपति की सेवा में—

धन्यवाद

मम कृति दोस भरी खरी, निरी निरस जिय जोइ—
है उदारता रावरी करी पुरसकृत सोइ।

× × ×

मधु मिलन

सुधा[२]-जनक जुग-मधु-मिलन सुमन-खिलन मधु माहिं ;
उर-उपबन मैं सुरस-कन सुख-सौरभ सरसाहिं।

× × ×

ब्रजबानी

बर ब्रजबानी-पदुमिनी प्राचि-ओरछा-ओर—
लखि तमहर प्रिय बीर-रबि खिली पाइ सुख-भोर।
ब्रजबानी-घन-प्रगति-घन देस-गगन-बिच छाइ—
दियौ दयालु महेंद्रजू जन-मन मोर नचाइ।

× × ×

---

१. ओरछा में, वीर-वसंतोत्सव के अवसर पर, दुलारे-दोहावली पर देव-पुरस्कार प्राप्त कर लेने के उपरांत, पुरस्कार-प्रदाता को, दोहावलीकार द्वारा दिया गया धन्यवाद।

२. ओरछाधिपति की ७॥ वर्ष की कन्या और उसी उम्र की सुधा-पत्रिका।

आलोचकों के प्रति

संतत मद हू तें अधिक पद को मद सरसाइ;
वाहि पाइ[1] बौराइ, पै याहि पाइ[2] बौराइ।

तो भी

जे पद मद की छाकु छकि बोलें अटपट बैन,
सोऊ सुजन कृपा करैं, भरैं नेह सों नैन।

× × ×

अंतिम प्रार्थना

नेह-नेह दै जो दियौ साहित-दियौ जगाइ,
सतत सरसौई रखियौ जगत जोति जगि जाइ।

श्रीमान् का प्रेम-पूर्वक प्रदत्त यह प्रसिद्ध पुरस्कार प्राप्त करके मैं अपने को गौरवान्वित समझता और इसके लिये श्रीमान् को सादर धन्यवाद देता हूँ। किंतु श्रीमान् को विदित ही है कि मेरा तो सर्वस्व ही सरस्वती माता पर न्योछावर है। फिर यह वाणी देवी का प्रसाद तो ख़ास तौर पर उन्हीं को समर्पण होना चाहिए। अतएव मैं आज इस पुरस्कार को भी सहर्ष एक ऐसी शुभ साहित्यिक सेवा में लगाने को उद्यत हूँ, जिसकी आवश्यकता का अनुभव सुदीर्घ समय से सभी सहृदय साहित्यिक सज्जन—कृतविद्य कवि-कोविद कर रहे होंगे। श्रीमान् का दिया हुआ यह धन मैं श्रीमान् के ही नाम से—वसंत-पंचमी[3] के शुभ दिन को अमर करने के लिये—नवीन और प्राचीन

१. पाठांतर सेइ।

२. पाठांतर लेइ।

३. वसंत-पंचमी के ही दिन मेरा जन्म हुआ, मेरी प्यारी गंगा-पुस्तकमाला का और गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस का जन्म भी इसी दिन हुआ, तथा वसंत-पंचमी को ही मैं उस स्वर्गीय आत्मा से भी एक किया गया था, जिसके नाम से मैं गंगा-पुस्तकमाला को गूँथ रहा हूँ।

काव्य-पुस्तकों के प्रकाशन में लगाना चाहता हूँ। पुस्तक-रूप में इतनी ही संपत्ति मैं अपनी ओर से भी इसमें सम्मिलित करके एक पुस्तक-माला 'देव-सुकवि-सुधा' नाम से, ४,०००) के मूल-धन से, प्रकाशित करूँगा। देव-पुरस्कार की रक़म से जो माला चलाई जाय, उसमें देव-शब्द संयुक्त होना तो ठीक है ही, सुधा-शब्द भी स्पष्ट कारणों से समीचीन है। आशा है, सहृदय साहित्य-संसार को भी यह नाम बहुत सार्थक—समुचित समझ पड़ेगा। अस्तु। इस पुस्तकावली का प्रबंध एक परिषद् द्वारा होगा, जिसमें अनेक सदस्य रहेंगे। इनका निर्वाचन बाद में हो जायगा। मेरी इच्छा है कि श्रीमान् सवाई महेंद्र महाराजा साहब स्वयं इसके सभापति रहें, और मैं मंत्री के रूप में सेवा करूँ। आशा है, श्रीमान् मेरी यह सांजलि समभ्यर्थना स्वीकार करके मुझे इस संपत्ति को इस शुभ कार्य में लगाने का आदेश देंगे। समिति को या मुझे अधिकार होगा कि किसी सुप्रसिद्ध साहित्यिक संस्था को यह सारी संपत्ति, जब समुचित समझे, समर्पित कर दे।

टीकमगढ़
वसंत-पंचमी, १९९१ } दुलारेलाल भार्गव